"मैं यह नहीं कहता कि जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों का विलीनीकरण हो जाए। ऐसा होना दुःशक्य है। किन्तु परस्पर समन्वयीकरण तो होना ही चाहिये। कम से कम आचार विचार की सहिष्णुता रखकर एकीकरण तो अवश्य होना चाहिये। यही वर्तमान युग की मांग है। जैन एकता के पीछे यही मेरा दृष्टिकोण है।"

—विजय वल्लभ सूरि

मणिभद्र

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

का

वार्षिक मुख-पत्र

रजत जयन्ति अंक

पच्चीसवां पुष्प

वि० सम्वत् २०४०

सम्पादक मण्डल :

मोतीलाल भड़कतिया
हरिश्चन्द्र मेहता
राकेश कुमार मोहनोत
मनोहरमल लूनावत
श्रीमती शान्तिदेवी लोढा

मुद्रक :

त्रिवेणी प्रिन्टर्स,
जौहरी बाजार, जयपुर-3

कार्यालय :

श्री आत्मानन्द सभा भवन
घी वालों का रास्ता,
जयपुर-302003

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

संघ की स्थायी प्रवृत्तियां

- श्री सुमतिनाथ जिन मंदिर सम्वत् 1784 मे प्रतिस्थापित 256 वर्षीय सर्वाधिक प्राचीन मंदिर जिसमे आठ सौ वर्ष पुरानी विभिन्न प्राचीन प्रतिमाओं सहित 31 पाषाण प्रतिमायें, पंच परमेष्ठी के चरण व नवपदजी का पाषाण पट्ट अधिष्ठायक देव परम प्रभावक श्री माणिभद्रजी, श्री गौतम स्वामी आचार्य विजय-हीरसूरीश्वरजी, आ श्री विजयानन्द सूरीश्वरजी म० की पाषाण प्रतिमायें शासन देवी (महाकाली देवी) एवं अम्बिकादेवी की अति प्राचीन एवं भव्य प्रतिमाओं सहित स्वर्ण मण्डित सम्मेद शिखर, शत्रुंजय नन्दीश्वर द्वीप, गिरनार, अष्टापद महातीर्थ एवं बीस-स्थानक के विशाल एवं अद्भुत दर्शनीय पट्ट।

- भगवान श्री ऋषभदेव स्वामी का मंदिर बरखेड़ा तीर्थ जयपुर-टोंक रोड पर जयपुर से 30 कि० दूर एवं शिवदासपुरा से 2 कि० पर बाईं ओर स्थित बरखेड़ा ग्राम मे यह प्राचीन मंदिर स्थित है। इसका इतिहास लगभग तीन सौ वर्ष पुराना बताया जाता है। प्रतिवर्ष श्रीसंघ के तत्वावधान मे फाल्गुन माह मे आयोजित वार्षिकोत्सव मे प्रात कालीन सेवा पूजा, दिन मे प्रभु पूजन पढाना एवं सायकाल को साधर्मी वात्सल्य का आयोजन श्रीसंघ की ओर से सम्पन्न होता है। जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा अत्यन्त भव्य और दर्शनीय है। तीर्थ स्थल सुरम्य सरोवर के किनारे स्थित होने से रमणिक तो है ही आगन्तुकों के लिए शांत वातावरण एवं आल्हादपूर्ण स्थिति का सृजन करता है।

- भगवान श्री शांतिनाथ स्वामी का मंदिर चन्दलाई यह मंदिर भी शिवदासपुरा से 2 कि० दाहिनी ओर चन्दलाई कस्बे मे स्थित है। इस मंदिर की प्रतिष्ठा सम्वत् 1707 मे होना ज्ञातव्य है। गत वर्ष लगभग साठ हजार की लागत से मन्दिर जी का जीर्णोद्धार व मूल गम्भारे का नव निर्माण करवाया गया है। मिगसर बदी 5 स० 2039 को आ श्रीमद्विजय मनोहरसूरीश्वरजी म सा० की निश्रा मे पुन प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई है।

- भगवान श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मंदिर जनता कालोनी, जयपुर इस मन्दिर की स्थापना डा भागचन्दजी छाजेड द्वारा सन् 1957 मे की गई और सन् 1975 मे यह मंदिर श्रीसंघ को सुपुर्द किया गया। अगस्त माह के प्रथम सप्ताह मे इसका वार्षिकोत्सव सम्पन्न होता है। यहा पर श्री सीमंधर स्वामी के शिखरबन्द भव्य मन्दिर का निर्माण कार्य गत वर्ष प्रारम्भ किया गया और कार्य द्रुत-गति से जारी हैं, दान-दाताओं का आर्थिक सहयोग प्रार्थनीय हैं।

□ **श्री जैन कला चित्र दीर्घा** : भारतवर्ष के प्रमुख तीर्थ स्थानों में प्रतिष्टित जिनेश्वर भगवानों एवं जिनालयों के भव्य एवं अलौकिक चित्र, जैन सस्कृति के श्रोत विभिन्न संकलनों का अपूर्व संकलन।

□ **भगवान महावीर का जीवन परिचय भित्ति चित्रों में** : स्वर्ण सहित विभिन्न रंगों मे कलाकार की अनूठी कला का भव्य प्रदर्शन। अल्प पठन एव दर्शन मात्र से भगवान के जीवन में घटित घटनाओं की पूर्ण जानकारी सहित अत्यन्त कलात्मक भित्ति चित्रों के दर्शन का अलभ्य अवसर।

□ **श्री आतमानन्द सभा भवन** : विशाल उपाश्रय एवं आराधना स्थल जिसमें शासन प्रभावक विभिन्न आचार्य भगवन्तो, मुनिवृन्दों एवं समाज सेवको के चित्रो का अद्वितीय सग्रह एव आराधना का शांत एवं मनोरम स्थल।

□ **श्री वर्धमान आयम्बिल शाला** . परम पूज्य उपाध्याय श्री धर्मसागरजी महाराज की सद्-प्रेरणा से सम्वत् 2012 में स्थापित आयम्बिल शाला में प्रतिदिन आयम्बिल की समुचित व्यवस्था के साथ उष्ण जल की सदैव पृथक से व्यवस्था।

आयम्बिल शाला के हाल का पुनर्निर्माण कराया गया है। स्वयं अथवा परिजनों में से किसी का भी फोटो लगाने का 1111) रु० नखरा। इससे कम योगदानकर्त्ताओं के नाम पट्ट पर अंकित किये जाते हैं। स्मृतियों को स्थायी रखने सहित आयम्बिल शाला में योगदान का दो तरफा लाभ।

□ **श्री आतमानन्द जैन धार्मिक पाठशाला** . स्व. श्री चौधरी भवर लाल जी की स्मृति में सगनचन्द ग्रुप द्वारा सहायतित बच्चों के चरित्र निर्माण एवं धार्मिक शिक्षा की सायं-कालीन व्यवस्था जिसमें सुयोग्य प्रशिक्षिका द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था।

□ **श्री जैन श्वे० मित्र मण्डल पुस्तकालय एवं वाचनालय** : श्रीमान् रतनचन्द जी कोचर के सद् प्रयत्नों से सन् 1930 में स्थापित पुस्तकालय। दैनिक, साप्ताहिक, मासिक जैन-अजैन समाचार पत्रो सहित धार्मिक पुस्तकों का विशाल संग्रह।

□ **श्री सुमति ज्ञान भण्डार** : पं० भगवानदासजी जैन द्वारा प्रदत्त एवं अन्यान्य श्रोतों से प्राप्त हस्तलिखित एवं दुर्लभ अन्य ग्रन्थों का संग्रहालय।

□ **उद्योगशाला** : महिलाओ के लिए सिलाई बुनाई प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था।

□ **साधर्मी भक्ति** : साधर्मी भाई बहिनों को गुप्त रूप से सहायता पहुंचाने का सुलभ साधन। जरूरतमन्द साधर्मी भाई बहिनों के भरण पोषण मे सहायक बनने, जीविकोपार्जन में सहयोग देने, शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु सहायता देने और लेने का अद्वितीय संगम। साधर्मी भक्ति की कामना रखने वाले भाई बहिनों के लिए इस सस्था के माध्यम से गुप्त दान का अपूर्व क्षेत्र।

□ **मणिभद्र** : इस संस्था की निःशुल्क वार्षिक स्मारिका जिसमें आचार्य भगवंतो, साधु-साध्वियो, विद्वानों, विचारकों के सारगर्भित एवं पठनीय लेखो सहित संस्था की वार्षिक विभिन्न गतिविधियों का विवरण, संस्था का वार्षिक आय व्यय का विवरण, कलात्मक चित्रों सहित विभिन्न प्रकार की हमेशा संग्रह-णीय सामग्री का प्रकाशन।

निर्माणाधीन

विहरमान भगवान श्री सीमन्धर स्वामी का जिनालय

जनता कालोनी, जयपुर

आर्थिक योगदान हेतु विनम्र निवेदन

" देवाना स्थापन पूजा पापघ्न दर्शनादिकम धर्म वृद्धिर्भवेदर्थ कामो मोक्ष स्ततो नणाम"
(प्रमाद मण्डन)

देवो की स्थापना पूजा और दर्शन करने से मनुष्य के सब पापो का नाश
होता है तथा धर्म की वृद्धि एवम् अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ती होती है।

अनुवादक प० भगवान दास जैन

डा० नागचन्दजी छाजेड द्वारा पाच भाईयो की कोठी जनता कालोनी जयपुर मे स्थित अपने प्लाट मे श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी जिनालय की स्थापना की गई थी और सन् 1975 मे यह जिनालय श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर को समर्पित किया गया था। इस वर्ष इस जिनालय का 26 वा वार्षिकोत्सव महान् तपस्वी 1008 श्रीमद् विजय हीरा सूरीश्वरजी म सा की निश्रा मे महोत्सव सम्पन्न हुआ।

यहा पर भव्य एव आमूल चूल जीर्णोद्धार कर विशाल जिनालय बनाने की योजना वर्षो से सघ के विचाराधीन थी। अब गत वर्ष विराजित पूज्य आचार्य श्रीमद्मनोहर सूरीश्वरजी म सा की सद्प्रेरणा से इसी स्थान पर श्री सीमधर स्वामी का शिखरयुक्त भव्य मन्दिर बनाने का कार्य श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ जयपुर के तत्वाधान मे प्रारम्भ कर दिया गया है।

जिनालय के प्रथम चरण की योजना लगभग तीन लाख रुपयो की बनाई गई थी। मन्दिर निर्माण कार्य द्रुतगति से चल रहा है और मूल गम्भारे एव रग मडप के छत तक का निर्माण कार्य लगभग पूर्ण होने को है। लगभग दो लाख रुपयों का इस वर्ष उपयोग हो चुका है। सम्पूर्ण मन्दिर निर्माण के लिए बहुत बडी धनराशी की आवश्यकता है। इसमे प्रत्येक जैन बधुओ का सक्रिय सहयोग एव आर्थिक अनुदान सादर प्रार्थनीय है। एक मुश्त अधिकतम एव न्यूनतम आर्थिक योगदान तो सहर्ष एव साभार स्वीकार होगें ही साथ ही दानदाताओं की सुविधा के लिए तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य एव सुविधानुसार ऐसे महान् कार्य मे भागीदार बन सके इस हेतु सहायता की निम्नाकित योजनाओ के सदस्य बन सकते हैं।

२५६ वर्षीय अति प्राचीन जिनालय

श्री सुमतिनाथ स्वामी का मंदिर,

घी वालों का रास्ता, जयपुर में विराजित
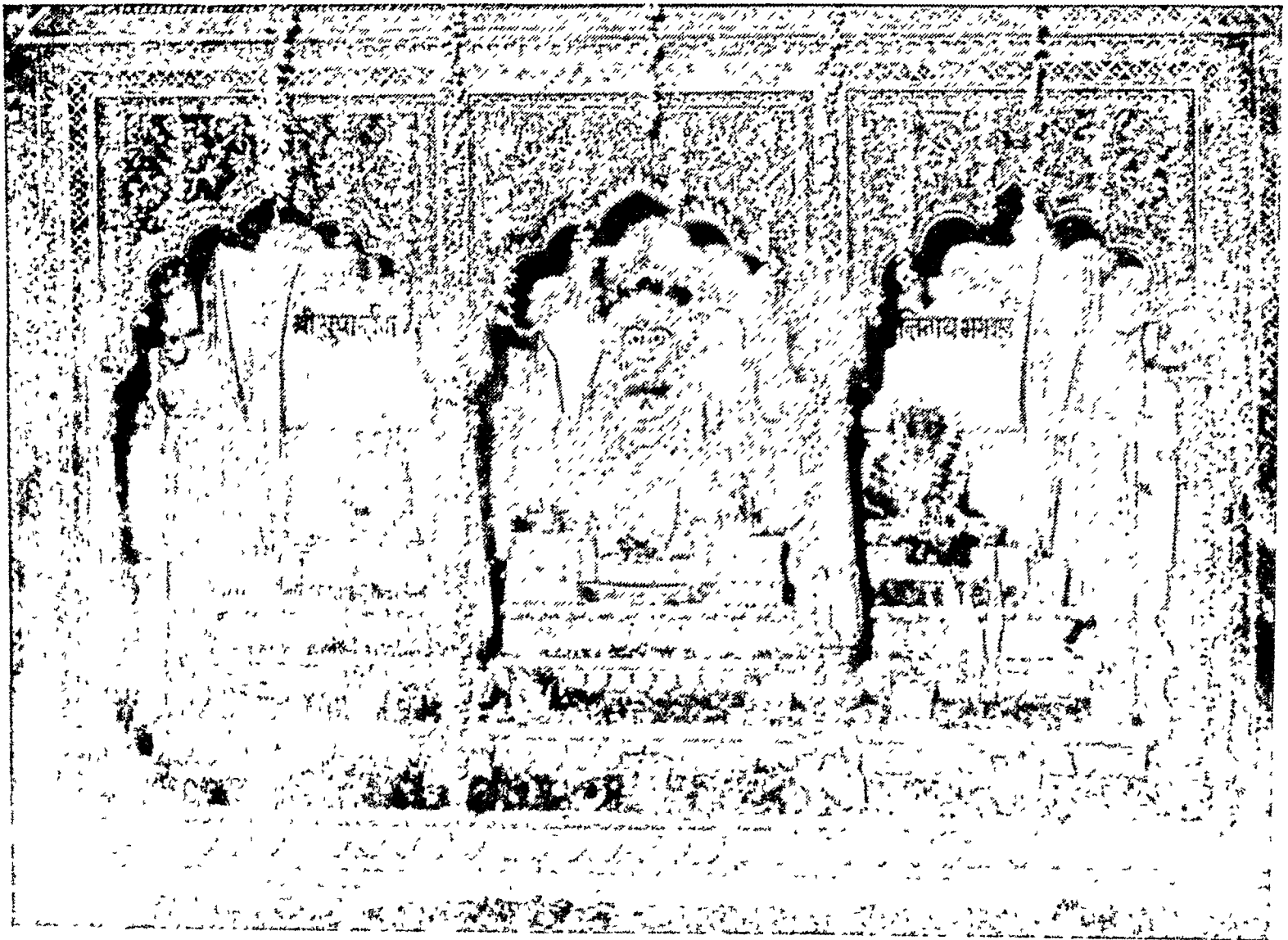
श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी | श्री केसरियानाथ स्वामी | श्री शांतिनाथ स्वामी
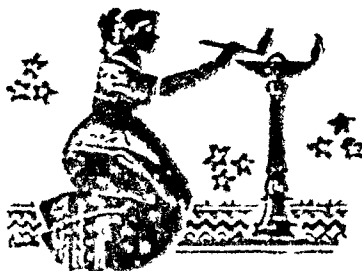
1 पैसे (प्रतिशत) की भागीदारी : न्यूनतम एक पैसे की भागीदारी के तहत प्रथम चरण के निर्माण मे जो योगदान करना चाहें उन्हें 3001) रु० का भुगतान करना है। सर्वप्रथम 601) एक मुश्त तथा प्रतिमाह 100) की दर से 24 किश्तों में शेष राशि का भुगतान करना है। समस्त राशि एक साथ भी दी जा सकती है।

1) रु0 प्रतिदिन का योगदान : इस योजना में सम्मिलित होने वालों को कुल 1111) रु० देना है। इसके तहत प्रतिमाह 30) रु० के हिसाब से तीन वर्षो में अपना दायित्व पूर्ण करना है। फिर भी प्रार्थना है कि शीघ्रातिशीघ्र अपने दायित्व को पूर्ण करने का प्रयास करें।

1111) रु० एवं इससे अधिक राशि देने वालों के नाम शिलालेख पर अंकित किए जावेंगे।

समस्त राशि श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर के खातों में जमा होगी। अत: चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट से भेजे जाने वाली राशि :
"**श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ मन्दिर, जयपुर**" के नाम से भेजी जावें।

सभी के हार्दिक एवं उदारमना सहयोग की कामना सहित,

विनीत,

हीराचन्द चौधरी	**शान्तिकुमार सिंघी**	**मोतीलाल भड़कतिया**
अध्यक्ष	संयोजक	संघ मन्त्री

मन्दिर व्यवस्था उप समिति
श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

★★★★

मणिभद्र के लेखकों से विनम्र निवेदन

यह तो सर्वविदित है कि प्रतिवर्ष भगवान महावीर वांचना दिवस पर "**मणिभद्र**" प्रकाशित किया जाता है जिसमें आचार्य भगवन्तो साधु-साध्वी वृन्द एवं विद्वान मनीषियों की मौलिक रचनायें संकलित होती है। लेख भेजने हेतु प्रति वर्ष निवेदन पत्र प्रेषित किए जाते है। लेकिन गुरु भगवन्तों के चातुर्मासिक स्थानों की जानकारी के अभाव में यथा समय पत्र उनकी सेवा में नही पहुंच पाते।

अत: पुन: विनम्र निवेदन है कि जो भी अपनी रचनाएं प्रकाशनार्थ भिजवाना चाहें वे कृपया अधिकतम श्रावण मास के मध्य तक अवश्य भिजवाने की कृपा करें।

☆ अनुक्रमणिका ★

□●□

प्रकाशकीय

श्री जन श्वे० तपागच्छ सघ, जयपुर के वार्षिक मुख पत्र "मणिभद्र" के इस रजत जयन्ति अक (२५वा अक) का आपकी सेवा में प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है।

जयपुर श्रीसघ के लिए यह प्रबल पुण्योदय एव सौभाग्य का विषय है कि यहा पर लगातार तीन वर्षों मे आचार्य भगवन्त के चातुर्मास सम्पन्न हो रहे है। इस वर्ष परमपूज्य महान तपस्वी आचार्य श्री मद्विजय हीकारसूरीश्वरजी म० सा० यहा विराजमान है और आपकी निश्रा में तप जप सहित विभिन्न आराधनायें सम्पन्न हो रही है। सम्पूर्ण चातुर्मास काल मे स्नात्र महामहोत्सव होता रहेगा तथा क्रमवार अट्ठम तप की तपस्यायें चल रही हैं। नवान्हिका महोत्सव भी हाल ही मे सम्पन्न हुआ है और चातुर्मास काल में और भी अट्ठाई महोत्सव सम्पन्न होने की सम्भावना है। जयपुर श्रीसघ मे अत्यन्त उल्लास एव आराधनामय वातावरण व्याप्त है।

इसी प्रकार से इस श्रीसघ के मुख पत्र "मणिभद्र" ने अपने २५ वर्ष पूर्ण कर लिए है। किसी भी पत्र के लिए यह गौरव का विषय हो सकता है। इस प्रकाशन मे आचार्य भगवन्तो साधु साध्वीवर्ग एव विद्वान् मनीषियों का सृजनात्मक सहयोग तो प्राप्त होता ही रहा है, दानदाताओ ने भी अपने हार्दिक आर्थिक सहयोग से अनूठा योगदान किया है। इन सभी के सतत् सहयोग का ही फल है कि यह पत्र निर्बाध रूप से अपना कार्यकाल पूरा करता रहा है। सम्पादक मण्डल को विश्वास है कि भविष्य में भी सभी का सहयोग पूर्ववत् प्राप्त होता रहेगा।

इस अक के प्रकाशन मे भी सभी का हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है। साथ ही श्री नरेन्द्र कुमार जी कोचर, श्री आर सी शाह एव श्री भगवान दासजी पालीवाल का अर्थ सग्रह मे विशेष योगदान रहा है। अत सम्पादक मण्डल समस्त रचनाकारो एव विज्ञापनदाताओ के प्रति अपना आभार व्यक्त करना अपना परम कर्त्तव्य समझता है।

रचनाए मूल रूप मे प्रकाशित की गई है एव सत्यासत्य का निर्णय पाठको को करना है। अत्यन्त सावधानी रखने पर भी किसी रचना मे इस प्रकार का उल्लेख आ गया हो जो किन्ही के मत मतान्तरो के विपरीत हो एव इससे उनके मन पर किसी प्रकार का आघात पहुचा हो तो सम्पादक मण्डल अग्रिम रूप से क्षमा प्रार्थी है।

हार्दिक शुभकामनाओ सहित,

सम्पादक मण्डल

आचार्यदेव श्री १००८ श्रीमद्विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी म. सा.

सादर समर्पण

परम पूज्यपाद, ज्योतिष-मार्तण्ड तपोनिधि, सम्मेतशिखर आदि तीर्थोद्धारक, जिन शासन शिरोमणि, महान तपस्वी आचार्य भगवन्त श्री १००८ श्रीमद् विजय पूर्णानन्दसूरीश्वरजी म० सा० के प्रथम पट्टधर श्री सम्मेतशिखर तीर्थ के महान रक्षक, ४ वर्षी तप, ५५१ बेले एवं ३८५ तेले तथा ६ अट्ठाई के महान तपस्वी परम पूज्यपाद आचार्यदेव १००८ **श्रीमद्विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी म० सा०** जिनकी पावन निश्रा मे जयपुर श्री संघ मे चातुर्मासकालिक आराधनाये सम्पन्न हो रही है, मणिभद्र का यह रजत जयन्ति २५ वा अंक सादर समर्पित है ।

'पारिणामिकी हिंसा से बचने के उपाय'

आचार्य श्री विजय ह्रींकार सूरिश्वरजी म० सा०, जयपुर

अहिंसा जैन धर्म की आधारशिला है। इसलिये तीर्थंकर परमात्मा को जब केवल ज्ञान एवं केवलदर्शन होता है उससे तीसरे भव पूर्व उनके हृदय मे करुणा का एवं दया का महा स्रोत उमड़ पड़ता है और उस समय 'सवि जीव करूं शासन रसी, ऐसी भाव दया मन उल्लसी' अर्थात तीनों लोकों के समस्त प्राणियों को मै शासन का रसिया बनादूं, जिससे उनका कल्याण हो जाए, ऐसी भावना स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित हो जाती है। संसार के सब प्राणी सुखी हो जाएँ, सब में मैत्री भाव जगे, किसी को किसी का भय न रहे अर्थात सब अभय हो जाएँ आदि शुभ भावनाएँ पारिणामिकी हिंसा से बचने के साधन है।

आचार्य भगवन्त उमास्वाति जी ने 'तत्वार्थ सूत्र' मे स्पष्ट किया है कि 'प्राण व्यपरोपणं हिंसा' अर्थात् केवल शरीर से किसी को सताना, दुख देना अथवा प्राण रहित कर देना ही हिंसा नही, अपितु वचन से और मन से भी किसी जीव को कटु वचन कहना और मन मे दुर्भाव लाना भी हिंसा है। इनमे भी परिणाम पूर्वक, जानबूझ कर आर्त्त और रौद्र ध्यान द्वारा किसी के प्रति, तीव्र, तीव्रतर एवं तीव्रतम खोटा चिंतन करना, घात करने और दुख पहुँचाने की भावनाओं को जागृत करना पारिणामिकी हिंसा के ही विविध प्रतिरूप है, जिनका परिणाम बड़ा भयकर बतलाया गया है और उससे बचने हेतु स्थान स्थान पर सावधान किया है। इन बातो से ज्ञात होता है कि हिंसा का क्षेत्र कायिकी, वाचिकी, और पारिणामिकी से बहुत बड़ा है। उनमें भी पारिणामिकी हिंसा को तो बहुत ही भयावह बताया है। इस हिंसा पर प्रोक्त 'श्री प्रसन्नचन्द्र राजर्षि' का दृष्टान्त जिसका वर्णन कल्पसूत्र जी में आता है और हम सब प्रतिवर्ष सुनते है, प्रसिद्व ही है। उसे विस्तार से यहाँ कहने की आवश्यकता नही।

मुख्यत : इस पारिणामिकी हिंसा में कारण भूत तो अट्ठारह पाप स्थानक, प्राणातिपात, मृपावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह आदि है, जिनका सेवन हम संसार में रहते हुए प्रतिपल एवं प्रतिक्षण करते रहते है, इनमें चार कपाय 'क्रोध, मान, माया, लोभ तो हम पर सदैव अपना घेरा डाले रहते है, परिणाम स्वरूप तीव्र, तीव्रतर, एवं तीव्रतम परिणामानुसार हम अशुभ कर्मो का बध निरंतर करते रहते हैं जिनका शुभाशुभ फल भव भ्रमण करते हुए अधिकाधिक भोगते रहते है। अतः ज्ञानी भगवन्तों ने बार-बार फरमाया है कि "हाण करे जे हेतनी जाल बजो एम जाणी"। मानसिक हिंसा का वर्णन शब्दों में नही किया जा सकता।

परमार्हत कुमारपाल प्रतिबोधक, कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य देव श्री हेमचन्द्र सूरीश्वर जी ने फरमाया है कि—

नामकृति द्रव्य भावै पुनतस्त्रि जगज्जनम्।
क्षेत्रे काले च सर्व स्मिन्नर्हतः समुपास्म है।"

इसलिये आ० भ० श्री उमास्वाति जी महाराज ने 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' में इस हिंसा से बचने हेतु बताया है कि 'मनः एवं मनुष्याणां

कारणम् बंध मोक्षयो' अर्थात् मनुष्य के 'बंध और मोक्ष (मुक्ति) का कारण मन ही है। अत मन पर काबू करो। उसे अपने वश मे रक्खो यदि सासारिक बधनो से मुक्त होकर (छूटकर) सच्चे आत्मिक सुख को प्राप्त करना है तो।

मन को वश करने की बात कहना जितना सरल है उतना ही कठिन है। इन्द्रियो आदि को वश मे करना फिर भी सरल है, किन्तु मन को सयमित करना टेढी खीर है। इसे वश मे करने हेतु कई ऋषि, महर्षियो ने अपना जीवन खपा दिया, पर यह चचल मन काबू मे नहीं आया और जिसके आगया वह जन्म जरा के चक्कर से छूटकर अजर अमर हो गया। पारिणामिकी हिंसा का मुख्य सम्बन्ध इसी मन से है।

ज्ञानियो ने पारिणामिकी हिंसा से बचने हेतु फरमाया कि मन को वश मे रक्खो और मन को वश करने हेतु योग साधन, तप, जप, भक्ति आदि कई उपाय बताये है।

अभी पर्युषण पर्वाधिराज की शुभ वेला है। इसमे तप, जप, पूजापाठ, स्तवना, प्रभु भक्ति, पौषध प्रभावना आदि अनेको कार्य इस हिंसा से बचने हेतु किये जा सकते है। इनमे से अल्पकालिक एव दीर्घकालिक साधन हमे चुनने होगे। दीर्घकालिक साधन जिनसे हम इससे बच सकते है, वह है नवकार मत्र के जरिए अरिहत परमात्मा की सम्पूर्ण समर्पण भाव से भक्ति। अनुभव के आधार पर निस्सकोच यह स्वीकारा जा सकता है कि मानवो के लिये इससे बढकर अन्य सब साधन गौण है। जिसने यह सर्वोपरि सर्वोच्च सत्ता की शरण नवकार मन्त्र के जरिये स्वीकार करली उसे समझ लेना चाहिये कि उसके सब मार्ग प्रशस्त हो गये। जिन प्रतिमा एव नवकार मन्त्र से बढकर, इन अट्ठारह पाप स्थानक जो इस हिंसा मे कारण भूत है, अन्य कौनसा साधन हो सकता है?

नवकार गिनते हुए प्रक्षाल करो, पूजा करो पुष्प चढाओ और भडार भरो। आपको अल्प समय मे ही यह बोध हो जायेगा कि हमारी हिंसा सम्बन्धी पारिणामिकी लेश्याओ मे कितना परिवर्तन आगया है। हम कितने विनम्र होगये है और हममे कितना समर्पण भाव आगया है। मुश्किल तो यह है कि हमने प्रभु-प्रतिमा को आज तक खिलौना रूप समझा और अब भी समझ रहे हैं। जिन प्रतिमा मे अपूर्व शक्ति अतुलबल, अतुल पुण्य राशि स्थित है। दृष्टान्तरूप सर्वार्थसिद्ध के देवता भी अपने अवधिज्ञान मे उसकी तुलना नही कर सकते। जानने की कोशिश अवश्य करते है। चौदह राजलोक मे स्थित समस्त चराचर प्राणियो के पुण्य से अनन्त गुणी शक्ति सवनिधि' मय शाश्वती व अशाश्वती जिन प्रतिमाये है। जो हर प्रकार के आध्यात्मिक विशुद्ध ध्यान मार्ग मे पूर्ण समर्थ है और सासारिक चिन्ताओ को दूर करने मे तो चिन्तामणी रत्न समान है ही, उसकी अलौकिक साधना से हम विमुख है। देवलोक वासी देव जिन्हे अपार भौतिक सुख के साधन उपलब्ध है, विचार करें तो ज्ञात होता है, जिन प्रतिमा की नाना प्रकार से अनुपम भक्ति करने मे वे कितने तल्लीन होते है। प्रथम देवलोक के स्वामी सौधर्मेन्द्र पाच रूप बनाकर प्रभु भक्ति करता है उसकी यथार्थ जानकारी केवली गम्य है। कितना जबरदस्त समर्पण भाव, विवेक उनमे प्रभु प्रतिमा हेतु रहता है। उनके लिये तो ससार तिरने हेतु मुख्यत जिन प्रतिमा का आधार है। किन्तु आज हम इस सुन्दरतम मार्ग से भटक गये है। फिर भी घबराने जैसी कोई बात नही। इन पर्वाधिराज पर्युषण के पवित्रतम दिनो मे हम प्रभु भक्ति की प्रत्येक क्रिया नवकार मन्त्र के जरिये करने का सकल्प कर लेंगे तो हमारा एव जगत का कल्याण होना असभावित नही। नमस्कार महामत्र के जाप एव इस नवकार मन्त्र के जरिये प्रभु प्रतिमा की भक्ति दोनो ही इस पारिणामिकी-हिंसा से बचाने मे पूर्णतया समर्थ हैं। □

धर्म कल्प वृक्ष का मूल

मुनि श्री रत्नसेन विजयजी म. सा.
(अनुवादक)
□ गुजराती ले० प० पू० अध्यात्म योगी
पन्यास प्रवर श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर्य

मैत्री निखिल–सत्वेपु प्रमोदो गुण शालिपु ।
माध्यस्थ्यमविनितेपु करुणा दुःख देहिपु ।।
धर्मकल्पद्रुमस्येता मूल मैत्र्यादिभावनाः ।
यैर्नज्ञाता न चाभ्यस्ताः: सतेपार्मतिदुर्लभः ।।

अर्थ—सर्व प्राणियों के विपय में मैत्री
गुणवानो के विपय में प्रमोद
अविनियों के विपय मे माध्यस्थ्य

और सर्वप्राणियो के विपय में मैत्री भाव होना चाहिये । ये मैत्र्यादि भावनायें धर्म कल्पवृक्ष का मूल है । जिसने अपने जीवन में इन भावनाओं को जाना नहीं, उनका अभ्यास किया नहीं, उसके लिए धर्म की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है ।

मैत्री भावना :

जीवन में धर्म प्राप्ति के पूर्व मैत्री आदि ये चार भावनाएं विपरीत रूप से जुड़ी हुई होती हैं और धर्म प्राप्ति के बाद अपने-अपने स्वस्थान में जुड जाती है ।

अर्थात् जीवन मे धर्म प्राप्ति के पूर्व मात्र स्व सुख की ही चिन्ता, मात्र स्वगुणों का ही प्रमोद मात्र स्वदुःख के प्रति ही करुणा और मात्र स्व पापों के प्रति ही उपेक्षा होती है ।

जबकि—

जीवन मे धर्म प्राप्ति के बाद सर्व के सुख और हित की चिन्ता, सर्व गुणीजनों के गुणों के प्रति प्रमोद सर्व दुःखी प्राणियो के प्रति करुणा और सर्व पापी प्राणियो के पापों के प्रति उपेक्षा होती है ।

धर्म प्राप्ति के पूर्व :—

दूसरे लोग मेरे प्रति मैत्री रखें, मेरे गुणों को देखकर आनन्द पावे, मेरे दुःखों के प्रति करुणा रखें और मेरे पापों के प्रति उपेक्षा रखें ऐसी भावना प्रत्येक के हृदय मे होती है ।

धर्म प्राप्ति के बाद :—

जीव सर्व जीवों के प्रति मैत्री आदि भावना को धारण करता है ।

प्रथम भावना आर्त और रौद्रध्यान स्वरूप है जबकि द्वितीय भावना धर्मध्यान और शुक्लध्यान स्वरूप है ।

जिस प्रकार क्षय (टी०बी०) के रोगी के लिए वसंतमालती, सुवर्ण भस्म लोह भस्म तथा अभ्रक भस्म आदि रसायन पुष्टिदायक बनती है उसी प्रकार ये चार भावनाएं आर्त और रौद्र ध्यान से होने वाले आन्तरिक क्षय रोग का नाश कर धर्म-ध्यान रूपी रसायन द्वारा अपनी आन्तरिक देह को पुष्ट करती है । खण्डित बनी हुई शुभ-ध्यान की धारा को ये भावनाएं फिर से जोड़ देती है ।

आर्तध्यान अर्थात् १—वर्तमान में जो अनुकूलताएं प्राप्त हुई है, वे कायम रहे ऐसी इच्छा करना 2—जो अनुकूलताएं प्राप्त नही हुई है उसकी प्राप्ति की इच्छा करना 3—वर्तमान में जो प्रतिकूलताएं मिली है उनको दूर करने की चिन्ता करना और 4—भविष्य मे कभी भी प्रतिकूलताएं न आवे ऐसा विचार करना ।

यही आर्तध्यान जब उग्र बनकर हिंसा असत्य चोरी और परिग्रह आदि का तीव्र रूप ले लेता है तब वह रौद्र ध्यान बन जाता है।

धमध्यान अर्थात् जीव आदि तत्व कर्म का स्वरूप, पचास्तिकायमय लोक स्वरूप की विचारणा करना। यह धमध्यान जब पराकाष्ठा पर पहुचता है तब आत्मानुभव होता है और उसी का नाम शुक्ल ध्यान है।

जैन प्रवचन यह अहिंसा और क्षमामय होने से मैत्रीमय है तथा अनेकातमय होने के कारण उनमे सर्व नयो को सापेक्ष रूप से अपने स्थान पर समान महत्व देने मे आया है। यह नय-सापेक्षता भी एक दृष्टिकोण से मैत्री का ही एक प्रकार है।

2 प्रमाद भावना

धम मार्ग मे सबसे अधिक प्रबल विघ्न प्रमाद है। प्रमोद भावना से प्रमाद दोष नष्ट हो जाता है। जब तक धम प्रमाद है तब तक उसके निवारण के लिए प्रमोद भावना जरूरी है।

वर्तमान साधना मे अनेक विघ्न दिखने पर भी जब तक प्रमोद भावना विद्यमान होगी तब तक अन्य विघ्न रहने वाले नही हैं इसके साथ ही इस भावना के प्रभाव से भविष्य की साधना मे आने वाले दोष भी दूर हो जाते हैं इस प्रकार की दृढ श्रद्धा होनी चाहिए।

भविष्य की साधना को निर्विघ्न और निमल बनाने के लिए प्रत्येक प्रसग और प्रत्येक व्यक्ति मे प्रमोद भावना के विषय रूप गुणाधिकता को शोध देना चाहिये और चित्त मे उसकी अनुमोदना तथा औचित्य के अनुरूप उसकी प्रशसा आदि करना चाहिये।

गुणानुरागी दृष्टि से गुणीजनो के आशीर्वाद प्राप्त होते हैं और लोकप्रियता बढती है।

दोष दृष्टि यह एक उग्र कोटि का विष है जो भवो भव तक जीव को मारता है।

गुण दृष्टि यह अमृत है जो जीव को अजरामर बनाती है।

श्री नमस्कार महामत्र का ध्यान यह प्रमोद भावना की उपासना का सवश्रेष्ठ साधन है। चौदह पूव का सार नमस्कार है अर्थात् प्रमोद भावना चौदह पूव का सार है। श्री नवकार सव-शास्त्रो मे व्याप्त है अर्थात् प्रमोद भावना सव-शास्त्रो मे व्यापक है। नमो यह मोक्ष का बीज है।

जिस प्रकार नमस्कार सव पाप नाशक और सब मगलो मे प्रथम मगल है उसी प्रकार प्रमोद भावना भी सव पाप प्रणाशक और सव मगलो मे प्रथम मगल है।

ग्रथ के प्रारम्भ मे इष्ट देवता को नमस्कार रूप भाव मगल ग्रथकार करते हैं उसका अथ यही है कि सब शास्त्रो और मगल कार्यो का प्रारम्भ प्रमोद भावना मे होता है।

सब अनुष्ठानो का प्रारम्भ इच्छामि खमा समणो से होता है वह भी प्रमोद भावना को प्रकट करने का एक प्रकार है।

कायोत्सग में भी श्री पचपरमेष्ठि और चौबीस जिनेश्वरो का ध्यान करने का होता है और प्रमोद भावना का ही एक प्रकार है।

प्रत्येक धर्म क्रिया के प्रारम्भ से अन्त तक की क्रिया करने वाले का चित्त क्रिया को बताने वाले जिनेश्वर देवो के ध्यान से अलकृत होता है और उसी से वह क्रिया भाव क्रिया अर्थात् अमृत क्रिया बनती है यह ध्यान प्रमोद भावना स्वरूप है इससे सिद्ध होता है कि क्रिया को अमृतमय बनाने वाली प्रमोद भावना है। यदि उस क्रिया की पूर्णाहुति के बाद भी यदि उस सुकृत की अनुमोदना करने मे आवे तो वह क्रिया उत्तरोत्तर विशेष फल-दायी बनती है यह अनुमोदना भी प्रमोद भावना का विषय है। और इस प्रकार क्रिया के

फल में अभिवृद्धि करने वाली यह प्रमोद भावना है।

गुरुकुलवास में बसने से कृतज्ञता, विनय वैय्यावच्च, क्षमा आदि गुणों का पालन होता है वह प्रगट अथवा अप्रगट रूप से प्रमोद भावना को ही पुष्ट करता है।

जगत् में जो कुछ भी सत्कार्य होते है, उन सबके पीछे प्रेरणा करने वाली यह प्रमोद भावना ही है।

श्री जिनमन्दिर आदि धर्म स्थान भी मुख्यतया प्रमोद भावना की नींव पर ही खडे हुए स्तम्भ है।

प्रमोद भावना की पराकाष्ठा श्री तीर्थंकर नाम कर्म की परम प्रकृष्ट पुण्य प्रकृति का उपार्जन कराती है क्योंकि उस पुण्य प्रकृति का उपार्जन करने वाली पुण्यात्मा पूर्व भव में तीर्थकर देवों के प्रति उत्कृष्ट, प्रमोद भाव को धारण करने वाली होती है और इसी कारण से वे महात्मा सम्पूर्ण जगत् में प्रमोद भावना के विषय बनते हैं।

इस प्रकार प्रमोद भावना में कारण भूत शुभ आलंवनो के आदर से विघ्नों का नाश और ध्यानादि से दृढता प्राप्त होती है।

3—करुणा भावना

दु:खी के दु:ख दूर हों, दूसरे का दु:ख मेरा ही दु:ख है यह करुणा भावना है इसे अनुकम्पा भी कहते है।

"अनु अर्थात् दूसरे का दु:ख देखने के वाद कंप अर्थात् उस दु:ख को दूर करने की हृदय में तीव्र भावना—उसे अनुकम्पा कहते है।

दु:खी प्राणियों को देखकर सत्पुरुषों के हृदय में एक प्रकार का कम्पन पैदा होता है और दूसरो के उन दु:खों को दूर करने की त्वरा पैदा होती है। यही अनुकम्पा अथवा करुणा है।

दूसरों को दु:ख न हो इस प्रकार का वर्तन दया कहलाता है। हीन गुणी अथवा दु:खी का तिरस्कार न करना—अघृणा कहलाता है। और दीन-दु:खी जनों को सुखी करने की तीव्र कामना व प्रयत्न दीनानुग्रह कहलाता है। करुणा-अनुकम्पा दया, अघृणा और दीनानुग्रह समानार्थक शब्द हैं।

मार्गानुसारी अर्थात् धर्म के अभिमुख होने वाले जीव में भी यह करुणा उत्पन्न होती है। यह करुणा 1—लौकिक 2—लोकोत्तर 3—स्वविषयक 4—पर विषयक 5—व्यावहारिक और 6—नेश्चयिक इत्यादि अनेक प्रकार की होती है।

1—लौकिक करुणा —अर्थात् दु:खी प्राणी को देखकर उसके दु:ख को दूर करने के लिए अन्न वस्त्र आदि प्रदान करना।

2—लोकोत्तर करुणा-दु:ख का मूल जो पाप,उस पाप को नाश करने के साधन उपलब्ध कराना उदाहरणत: धर्म देशना तीर्थ प्रवर्तन आदि इसके दो भेद हैं :—

एक संवेग जन्य और दूसरी स्वभाव जन्य। संवेगजन्य करुणा चौथे पांचवे और छठे गुणस्थानक में होती है और स्वभाव जन्य करुणा अप्रमत्तादि गुणस्थानक में होती है।

3—स्वविषयक करुणा अर्थात स्वसंबंधी दु:ख नाश करने के धार्मिक उपयोग की विचारणा करना।

4—पर विषयक करुणा अर्थात् दूसरे के द्रव्य तथा भाव उभय प्रकार के दु:ख दूर करने के लिए सम्यक् उपायों का सेवन करना।

5—व्यावहारिक करुणा अर्थात् दीन-हीन गरीव की अन्न जल-वस्त्र तथा औषध आदि की पूर्ति करना।

6—नैश्चयिक करुणा अर्थात् आत्मा के शुभ अध्यवसाय।

पांचवी और छठी करुणा परस्पर पूरक है। कभी-कभी शुभ अध्यवसाय पहले उत्पन्न होते हैं और फिर प्रवृत्ति होती है और कभी-कभी अन्नदान

आदि की प्रवृत्ति पहले होती है और शुभ अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रगटित अध्यवसाय वृद्धि को पाते हैं।

अर्थात् शुभ प्रवृत्ति से,शुभ अध्यवसाय न हो तो प्राप्त होते हैं और हो तो बढते हैं। इसके साथ ही शुभ प्रवृत्ति से, अशुभ अध्यवसाय आये हो तो चले जाते हैं और आने वाले रुक जाते हैं।

मुझे कभी भी दु ख न आवे यह भावना द्वेष रूप है उसका विषय स्व दु ख है दु ख के प्रति रहा द्वेष प्रतिकूल सयोगो के प्रति भी द्वेष पदा करता है। दु ख को दूर करने के लिए सभी प्राणी रात और दिन प्रयत्न करते है परन्तु दु ख के प्रति रहे हुए द्वेष को दूर करने का प्रयत्न कोई विरल आत्मा ही करती है।

कर्म के उदय से प्राप्त हुए वर्तमान दु ख को दूर करना–जीव के वश की बात नही है किन्तु उस दु ख के प्रति रहे हुए द्वेष को दूर करने की बात तो जीव के हाथ मे ही है।

वर्तमान दु ख दूर करने मे जीव परतन्त्र है किन्तु दु ख ऊपर के द्वेष को दूर करने मे वह स्वतन्त्र है। दु ख ऊपर का द्वेष दूर करने के बाद रहा दु ख वास्तव मे दु ख-ही नही है अर्थात् उस दु ख के समय चित्त में सक्लेश उत्पन्न नही होता है।

दु ख के प्रति रहे हुए द्वेष को दूर करने का सरलतम उपाय करुणा भावना है।

करुणा भावना अर्थात् दूसरो के दु ख दूर करने की वृत्ति।

स्वय के दु ख पर हम जो द्वेष करते है। वह द्वेष जब सब के दु ख के प्रति आ जाता है तो उसमें अपना दु ख भूल जाते हैं स्वय के दु ख के विस्मरण में ही साधना मात्र का रहस्य छुपा हुआ है। यह कार्य चित्त में करुणा भावना को दृढ करने से सरल बन जाता है। क्योंकि व्यक्तिगत दु ख के द्वेष का स्थान सर्व जीवो के दु ख को देना यही तो करुणा भावना का रहस्य है।

मेरे दु ख नष्ट हो जाय, इस वृत्ति के स्थान पर सर्व के दु ख नाश हो जाँय। ऐसी भावना जब प्रबल बनती है तब दूसरो का अपकार करने की मलिन वृति स्वत नष्ट हो जाती है।

अन्य की अपेक्षा मैं अधिक सुखी हू इस प्रकार जानने मे रूप, बल,धन बुद्धि, कुल तथा जाति आदि का अभिमान पैदा होता है उसे दर्प भी कहते हैं। इस दर्प से अन्य जीवो के प्रति एक प्रकार का तिरस्कार भाव पैदा होता है।

आत्म दृष्टि से सभी जीव आत्म तुल्य हैं, ऐसा जानकर जब दु खी जीवो के प्रति करुणा भावना स्थिर करने मे आती है तब अपना दर्प और अहंकार चला जाता है और दूसरो के प्रति रहा हुआ तिरस्कार भी दूर हो जाता है।

प्रत्येक वस्तु स्थान विशेष की अपेक्षा से ही हितकर अथवा हानिकर बनती है। स्थान विशेष की अपेक्षा से ही वही वस्तु हानिकर मिटकर हितकर बन जाती है और हितकर मिटकर हानिकर बन जाती है।

इन्द्रियो के विषय का प्रेम हानिकर है वही प्रेम जब परमेष्ठि भगवतो के प्रति करने मे आता है तब अत्यन्त लाभदायक बनता है। विषय के प्रति विरक्ति लाभदायक है और वही विरक्ति जब धर्म के प्रति होती है तो दु ख का कारण बनती है।

स्वय के वर्तमान कालीन दु ख के प्रति रहा हुआ द्वेष सक्लेशजनक बनता है परन्तु वही द्वेष जब सब दु खी प्राणियो के दु ख विषयक बनता है तो वह चित्त के सक्लेशो को दूर करने वाला बनता है।

तात्पर्य यह है कि वर्तमान काल और मात्र स्व विषयक सकुचित वृत्ति जब त्रिकाल विषयक और सर्व सत्त्व विषयक विशालता को धारण करती है तब चित्त के सक्लेशो का क्षय हो जाता है और निर्मलता प्राप्त होती है। मात्र इतना ही नहीं

आगे बढ़कर इस प्रकार की चित्त वृति से विश्व का सर्वोत्तम पद तीर्थंकर पद भी प्राप्त कर सकते हैं और वह पद सर्व जीवों के दुःख का उन्मूलन कराने वाला और धर्म तीर्थ का प्रवर्तन कराने वाला बनता है।

सर्व सत्क्रिया, सर्व धर्म अनुष्ठान और सर्व आगम वाक्यों के पीछे स्व-पर विषयक करुणा रही हुई है। स्वयम् जिस अनुष्ठान की साधना कर रहे हों, वह अनुष्ठान जिन आत्माओं को प्राप्त नहीं हुआ है, उन आत्माओं के प्रति करुणा भावना न हो तो उस अनुष्ठान में कभी भी सिद्धि प्राप्त नही होती है।

क्योंकि उसे अपने अनुष्ठान मे वास्तविक प्रणिधान प्राप्त नही हुआ है तथा उस अनुष्ठान की तात्विक महत्ता तथा दुर्लभता नही समझ पाये हैं अथवा तो उस अनुष्ठान के पीछे कोई परापकर्ष अथवा स्वोत्कर्ष का कोई मलीन आशय रहा हुआ होना चाहिये।

इस करुणा भावना से स्वोत्कर्ष और परापकर्ष की दुष्ट चित्त वृत्तियां नष्ट हो जाती है और शुद्ध प्रणिधान के प्रभाव से धर्मानुष्ठान की सिद्धि निर्विघ्न बनती है।

हीनगुणी के प्रति तिरस्कार और दुःखी के दुःख की उपेक्षा करने वाले का मोक्ष बहुत ही दूर रह जाता है।

जो दूसरों का तिरस्कार करता है वह स्वयं ही तिरस्कार को पाता है। जो दुःखी जनो की उपेक्षा करता है उसको आपत्ति के समय प्रायः दूसरो की सहायता प्राप्त नही होती है।

करुणा भावना के अभ्यास से इस तिरस्कार और उपेक्षा रूप अशुभ चितवृत्ति का विलय हो जाता है, अतः करुणा भावना का पोषण अति अनिवार्य है।

हितोपदेश का दान यह सर्वश्रेष्ठ करुणा है। श्री जैन प्रवचन (आगम) हितोपदेश रूप है अतः वह करुणामय है। श्री जिनेश्वरदेव पुष्करावर्त मेघ तुल्य है। जिस मेघ से हितोपदेश रूप अमृत की वृष्टि होती है। उस वर्षा से भव्य जीव परम शांति को प्राप्त होते हैं।

"ग्लान की सेवा" यह तीर्थंकर देवों की सेवा है और ग्लान की उपेक्षा यह तीर्थंकर देवों की उपेक्षा है यह वाक्य भी करुणा भावना के माहात्म्य का द्योतक है।

दान-शील-तप और भाव रूप चार प्रकार का धर्म चतुर्विध श्री संघ में करुणा के माहात्म्य का सूचक है।

दान द्वारा स्व और पर का उपकार होता है। शील और तप द्वारा स्व–पर दुःख का निवारण होता है। गृही धर्म और यतिधर्म के द्वारा भी अहिंसा का पालन होने से करुणा भावना का प्राधान्य ज्ञात होता है।

जिस धर्मानुष्ठान के मूल में दया करुणा का भाव नही है वह धर्मानुष्ठान वास्तव में धर्मानुष्ठान ही नही है। करुणामय जिन प्रवचनों के रहस्य हृदय मे करुणा भाव रखने से ही समझ सकते है।

दीन-हीन आत्माओं के प्रति रही हुई करुणा अधिक गुणी आत्माओं के साथ सम्बन्ध जुड़ाती है, उनकी करुणा का पात्र बनाती है। और उनकी करुणा का प्रभाव अधिकाधिक गुणों की प्राप्ति कराता है।

४—माध्यस्थ्य भावना

राग और द्वेष के बीच में जो खड़ा रहे वह मध्यस्थ कहलाता है। किसी भी प्रसंग में राग और द्वेष पैदा न हो जाय, उसके लिए पुनः पुनः चिंतन करना माध्यस्थ्य भावना है।

यह माध्यस्थ्य भावना —

१– पापी विषयक माध्यस्थ्य
२—वैराग्य विषयक माध्यस्थ्य
३—सुख विषयक माध्यस्थ्य
४—दुःख विषयक माध्यस्थ्य

५—गुण विषयक माध्यस्थ्य
६—मोक्ष विषयक माध्यस्थ्य
७—सर्व विषयक माध्यस्थ्य
आदि अनेक प्रकार की हैं।

१ पापी विषयक माध्यस्थ्य—

पापी जीवों को पाप से अटकाने के लिए प्रयत्न करने के बावजूद भी जब वे पाप से नहीं रुकते हैं तो उनके प्रति मध्यस्थ रहना चाहिए। परन्तु चित्त को क्रोधादि कषायो से कलुषित नही करना चाहिए। इस प्रकार की मध्यस्थता रखने से पापी जीव कदाचित पाप मे अति आग्रही बनने से रुक भी जाय और उससे भविष्य मे उसके सुधारने का अवसर बना रहता है।

उपरोक्त प्रसग मे उसका तिरस्कार करने से वह अपना द्वेष बन जाता है और इससे वैर की परम्परा बढती है। मध्यस्थ रहने से अपने प्रति उसके हृदय मे सद्भाव टिका रहता है और इससे भविष्य मे उसको सुधारने की तक अपने हाथ मे रहती है।

जिस प्रकार अपथ्य के सेवन से रोगी को अयोग्य समय में नहीं रोक सकते ह, उस समय माध्यस्थ्य भाव रखना ही हितकर होता है उसी प्रकार अहित के सेवन से नही रुकने वाले जीव के प्रति भी मध्यस्थ्य भाव रखना ही उभय के लिए हितकर रहता है। इस भावना से वैर की भावना रूप चित का मल दूर हो जाता है।

२ वैराग्य विषयक—

वैराग्य अर्थात् वैषयिक सुखों के प्रति एक प्रकार की अरुची अथवा द्वेष यह द्वेष प्रशस्त होने से पुण्यानुबधी पुण्य का हेतु है और यह परिणाम स्वरूप सासारिक सुख प्रति माध्यस्थ्य अर्थात् राग-द्वेष का अभाव पैदा कराता है।

सुख ऊपर द्वेष की तरह दु ख के प्रति राग यह भी प्रशस्त मनोभाव होने से पुण्यानुबधी पुण्य का हेतु बन कर परिणाम स्वरूप माध्यस्थ्य भाव को उत्पन्न करता है।

वैषयिक सुख के पीछे रहे हुए जन्म मरण की परम्परा का विचार करने से सुख ऊपर द्वेष पैदा होता हैं।

दु ख यह तो कर्म निर्जरा मे उपकारक और दुर्गति के दु खो को दूर करने मे कारणभूत है-इस प्रकार के विचार से दु ख ऊपर राग पैदा होता है।

3 सुख विषयक—

इस प्रकार के मध्यस्थ्य के दृष्टान्त है तीर्थंकरो का अतिम भव अनुतरवासी देव, धन्ना, शालिभद्र तथा गुणसागर आदि।

पुण्यानुबधी पुण्य का उपयोग कराने वाले ये महापुरुष सुख का उपभोग इच्छा रहित और पूर्व-कृत कर्म के उदय से ही करते थे। इस प्रकार का माध्यस्थ्य योग की छ दृष्टियों मे से प्रसार होने पर आता है।

४ दु ख विषयक माध्यस्थ्य —

इस माध्यस्थ्य के आदश हैं भगवान महावीर श्री गजसुकुलाल मुनि तथा खधक मुनि आदि। जिन्होने मरणान्त उपसर्गो मे भी दु ख प्रति माध्यस्थ्य भाव को धारण किया था।

५ गुण विषयक माध्यस्थ्य —

यह माध्यस्थ्य लब्धिधर मुनियो को होता है। वे विचार करते हैं कि क्षयोपशम भाव यह आत्मा की अपूर्णता है उससे आनन्द कैसे माना जाय? लब्धिसिद्धि आदि तो क्षयोपशम भाव की है।

६ मोक्ष विषयक माध्यस्थ्य —

अप्रमतादि ऊपर के गुण स्थानको मे प्रकट होता है उसे असग अनुष्ठान भी कहते हैं उस समय समता रूपी सहजानन्द अमृत के महासागर मे मस्त बनते हैं।

७ सर्व विषयक माध्यस्थ्य —

केवली भगवंतों को होता है तथा केवली भगवंतों द्वारा निर्दीष्ट तत्वों का अनेकांत दृष्टि से चिंतन करने वाले महात्माओं को यह माध्यस्थ्य प्रगट होता है। इस माध्यस्थ्य को धारण करने वाले महामुनियों सर्व विचारों और सर्व वचनो में मध्यस्थ्य होते है। उनकी मनः परिणति सर्वनयावगाही होती है। इस प्रकार की परिणति के विना वस्तु तत्व का यथार्थ निर्णय संभव नही है।

उत्सर्ग अपवाद, निश्चय व्यवहार ज्ञानक्रिया तथा विधि निषेध आदि सर्व दृष्टिकोणों को वे महापुरुप सापेक्ष रूप से ग्रहण करते है। वे आगमिक पदार्थो से और युक्तियुक्त पदार्थो को युक्ति से ग्रहण करते है।

परार्थ की संख्या में जिस प्रकार सौ की संख्या का समावेश हो जाता है उसी प्रकार अन्य दर्शनों के सद्विचारों को वे अपने दर्शन में समा लेते हैं अर्थात् उन विचारों का समावतार कर सकते है। सर्वत्र अनेकांत के चिंतन और शुभ भावना से उनका प्रत्येक विचार पवित्र होने से किस समय किस नय को आगे करने से स्व-पर का हित होता है? उसका विचार करके ही यथास्थान नय का उपयोग करते है।

माध्यस्थ्ता के कारण उनके वचन सागर से भी अधिक गम्भीर और चन्द्र से भी अधिक सौम्य होता है। मात्र सत्य के ही पक्षपाती होने के कारण उनमें स्व-दर्शन के प्रति राग अथवा पर दर्शन के प्रति द्वेष नही होता है।

इस प्रकार चारों भावनाओं को आत्मसात् करने का प्रयत्न करना चाहिये।

❁ मत करो ❁

हिंसा मत करो,
चोरी मत करो,
झूठ मत बोलो,
शराब आदि नशा मत करो,
व्यभिचार मत करो।

0 0 0 0

सत् को स्वीकार करो,
असत्य का त्याग करो,
सत् ही सोचो,
सत् ही बोलो,
सत् पर ही चलो।

मानवता के लक्षण

दोष त्याग : ६

अध्यात्मयोगी पन्यास श्री भद्रंकर विजय जी गणिवर्य के शिष्य

मुनि रत्नसेन विजय जी म सा.

अन्तरंग शत्रु

१-काम २-क्रोध 3-लोभ ४-मद ५ मान और ६-हर्ष ये आत्मा के अंतरंग शत्रु हैं। ये अतरग शत्रु बाह्य चक्षु से अगोचर होने के कारण इनके स्वरूप को पहिचानना अत्यंत दुष्कर कार्य है तथा इन शत्रुओ को पहचानने के बाद उन पर विजय प्राप्त करना-यह तो अत्यंत दुष्कर कार्य है।

युद्ध मे लाखो शत्रुओ पर विजय प्राप्त करने वाला भी इन शत्रुओं का गुलाम हो सकता है। इन शत्रुओ की गुलामी यही तो वास्तविक गुलामी है। इन शत्रुओ पर विजय प्राप्त किये बिना आत्मा कभी मुक्त नही बन सकती है। अत इन अतरग शत्रुओ को परास्त करने के बाद ही आत्मा स्वतत्र बन सकती है।

इन अतरग शत्रुओ का गुलाम वह जगत का गुलाम है और इन अतरग शत्रुओ का विजेता-वह जगत का स्वामी है।

जगत में रहे समस्त प्राणी अपनी आत्मा के मित्र हैं, क्योकि वे सजातीय बधु हैं। आत्मा के वास्तविक स्वजन बधुओ के साथ भी विग्रह कराने वाले-ये अतरग शत्रु ही है अर्थात् अपने बाह्य शत्रुओ के जनक भी ये अतरग शत्रु ही हैं।

परन्तु अफसोस ! कि सम्पूर्ण जगत इन अतरग शत्रुओ को पहिचानने मे बडे बडे महात्मा भी हार खा जाते हैं।

परस्पर वैर-विरोध राष्ट्रीय-झगडे राष्ट्र व्यापी आन्दोलन, हिंसा, लूट, बलात्कार, खून, हत्या, आत्म हत्या, नर सहार तथा कत्लेआम आदि भयकर कुकृत्यो को उत्पन्न करने वाले ये अतरग शत्रु ही है। इसीलिये तो महापुरुष आत्मा को सबोधित करते हुए फरमाते हैं कि आत्मन् इस बाह्य ससार मे तेरा कोई शत्रु नहीं है। जगत के प्राणी मात्र तेरे मित्र हैं, परन्तु काम-क्रोध-लोभ आदि अतरग शत्रु ही तेरे वास्तविक शत्रु हैं, अत उन पर विजय पाने के लिये तू प्रयत्नशील बन।

अब इन ६ अतरग पर क्रमश विचार करते हैं।

१-काम—विषय-सेवन, इन्द्रियों के भोग की लालसा भोग-तृष्णा, मैथुन-सेवन आदि काम के ही पर्याय है। अनादि काल से आत्मा वासनाओ की गुलाम बनी हुई है। मैथुन सज्ञा की पराधीनता के कारण ही आत्मा इस ससार मे अनेकानेक यातनाओ की भोग बनती है।

राम और रावण के भयकर युद्ध मे मुख्य कारण रावण की काम-वासना ही थी। कामान्ध व्यक्ति विवेक मे भ्रष्ट व्यक्ति बन जाता है, उसकी दीर्घदर्शिता नष्ट हो जाती है।

सीता के रूप मे मोहित बने हुये रावण ने सीता का हरण किया। जटायु हनुमानजी तथा विभीषण आदि अनेको ने रावण को बहुत 2 समझाया, परन्तु रावण ने अपना हठाग्रह नही छोडा और अन्त मे इस हठाग्रह के कारण भयकर युद्ध खेला गया, जिसमे करोडों व्यक्ति मारे

गये और अन्त में रावण को भी मौत का शिकार बनना पड़ा।

सामान्यतया नारक जीवों में भय संज्ञा, तिर्यंचों में आहार संज्ञा, देवों में तथा मानव मे मैथुन संज्ञा का प्राबल्य होता है। इतना होने पर भी इच्छा पूर्वक सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन की ताकत भी मानव में है। मानव इन अंतरंग शत्रुओं का संहार करने मे समर्थ है।

ब्रह्मचर्य अर्थात् आत्मा के ब्रह्म स्वरुप मे रमण करना। आत्मा का स्वभाव ज्ञानमय है। आत्मा के स्वभाव में वही व्यक्ति रमण कर सकता है, जिसने बाह्य पदार्थो का त्याग किया हो। आत्मा स्वयं अनन्त सुखमय है, परन्तु आत्म स्वभाव की अज्ञानता, मोह की पराधीनता तथा अनादि की वासनाओं के जोर के कारण व्यक्ति विषय वासनाओं के क्षणिक सुख मे ही लुब्ध हो जाता है।

यदि आत्म बल हो तो विषय सेवन का सम्पूर्ण त्याग करना चाहिये और मन वचन और काया से विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये परन्तु इतना सामर्थ्य न हो तो भी पर नारी सहोदर तो अवश्य बनना ही चाहिये अर्थात् अन्य की स्त्री से मातृत्व अथवा बहिन का भाव रखना चाहिये और यथाशक्य ब्रह्मचर्य पालन में तत्पर बनना चाहिये।

ब्रह्मचर्य पालन से आरोग्य पुष्ट बनता है मानसिक शान्ति का अनुभव होता है और आत्मिक गुणो का भी विकास होता है परन्तु जो व्यक्ति सम्पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन न कर सके उन्हे भी चाहिये कि वो अपनी-अपनी वासनाओं को नियन्त्रित रखें।

रूप के राग ने ही तो आज अनेकों के जीवन को बर्बाद कर दिया है। इसी पाप के कारण ही तो युवानों का सत्व धूल में मिल रहा है। वासनाओं का शिकार बना हुआ होने के कारण आज के युवान की सर्जन शक्ति समाप्त होती जा रही है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि रूप का गुलाम वह विश्व का गुलाम है। मात्र रूप से आकर्षित होने वाले में दीर्घदृष्टि का सम्पूर्ण अभाव ही होता है और उसके कारण बाद में पछताना ही पड़ता है।

साराश यह है कि यदि आप काम-विजेता न बन सके तो भी कामान्ध तो कभी नही बनना चाहिये। आख से अन्धा तो फिर भी अच्छा है, परन्तु काम से अन्धा अत्यन्त भंयकर है क्योंकि कामान्ध व्यक्ति अपने विवेक को ही खो बैठता है जिसके परिणाम स्वरुप उसे अनेकानेक आपत्तियों का भोग बनना पड़ता है।

२ - क्रोध :-क्रोध आत्मा का भंयकर अंतरंग और गुप्त शत्रु है जो आत्मा के समता रूपी धन को चोर लेता है। क्रोध आत्मा का मोह जनित परिणाम है। क्रोध आने पर व्यक्ति का शरीर कांपने लगता है और आवेश मे आ जाता है। आवेश में आकर व्यक्ति अपना भान खो बैठता है और बिना विचारे ही एक दम कार्य कर बैठता है और जैसे तैसे ही बकने लग जाता है।

क्रोध के परिणाम अत्यन्त भंयकर होते है। सर्व प्रथम तो क्रोध से व्यक्ति परस्पर की प्रीति को तोड़ देता है। वर्षो से चली आ रही परस्पर की मैत्री को तोड़ने के लिये क्रोध कैंची समान है अर्थात् क्रोध से सर्व प्रथम परस्पर की प्रीति का नाश होता है।

क्रोध करने से सामने वाले व्यक्ति के हृदय मे भी संताप पैदा होता है और अंत में वह भी अपना द्वेषी-वैरी बन जाता है।

क्रोध यह स्व-पर दोनों को हानिकारक हैं। क्रोध करने पर अपने हृदय मे भी दाह-परिताप उत्पन्न होता है और दूसरो के हृदय मे भी सताप पैदा होता है।

क्रोध झगडो का मूल है। मूल होना, यह मनुष्य का स्वभाव है, परन्तु उस मूल को क्षमा कर देना यह मानवता का एक लक्षण है। दूसरे की भूल होते ही जब हम तुरन्त डाटना फटकारना क्रोध करना प्रारम्भ कर देते हैं तो सामने वाले व्यक्ति के हृदय म भी रोष उत्पन्न हो जाता है और अचानक ही झगडा प्रारम्भ हो जाता है।

क्रोध अग्नि तुल्य है जो स्वय को जलाता है और कदाचित सामने वाले व्यक्ति को भी जला देता है। हम क्रोध करके सामने वाले व्यक्ति की शान्ति का भी नष्ट कर देते ह, यदि सामने वाले व्यक्ति म क्रोध उत्पन्न हो जाता है तो क्रोध करने वाला व्यक्ति सभी को अप्रिय बनता है। छोटी-२ बात मे क्रोध करने वाले व्यक्तियो के साथ व्यवहार करने मे बहुत ही सावधानी रखनी पडती है।

क्रोध करने से आत्मा का क्षमा गुण नष्ट होने पर आत्मा के अन्य गुण भी लुप्त हो जाते हैं।

क्षमा यदि वीर का भूषण अलकार है तो क्रोध वीर का दूषण है।

क्षमा साधुता का लक्षण है, क्षमा के चले जाने पर साधु-साधु नहीं रहता है। वह असाधु बन जाता है।

एक दृष्टान्त से इस बात पर विचार करें —

कोई एक सत था तप आदि से उसने एक देव को अपने वश कर लिया था। देव का स्मरण करते ही देव हाजिर होकर सत की सभी इच्छायें पूर्ण कर देता है।

एक दिन वे सत मार्ग पर चल रहे थे, अचानक सामने से आते हुए धोबी से टक्कर लग गई। सत को गुस्सा आ गया और आवेश मे ही जैसे तैसे बकने लग गये, धोबी को गुस्सा आ गया। थोडी ही देर मे तो वे लडने लग गये।

सत को विश्वास था कि मैं देव का स्मरण कर, अभी देव की सहायता से उसे मार दूगा। सत ने तुरत देव का स्मरण किया, परन्तु देव आया नही। दोनो परस्पर खूब लडे और अत मे धोबी ने सत को छोड दिया और धोबी आगे बढा।

उसी समय देव उपस्थित हुआ। सत ने कहा अरे देव मैंने बुलाया था तब तू क्यो नही आया। देव बोला मैं तो तुरन्त आ गया था परतु दोनो को लडते देख, मैं समझ नही पाया कि इसमे सत कौन है और धोबी कौन है।

सत देव की बात समझ गये और भूल का पश्चाताप करने लगे।

साराश यह है कि क्रोध आत्मा को दूषित करता है। अत क्रोध के निवारण के लिये क्षमा के शस्त्र को धारण करना चाहिये।

क्षमा के बल से ही तो भगवान महावीर ने भयकर दृष्टि विष सर्प को शान्त कर दिया था।

अनादि काल के सस्कारो के कारण क्रोध को जीतना सरल काम नही हैं फिर भी यदि धीरे२ प्रयत्न किया जाय तो अवश्य क्रोध को जीता जा सकता है।

क्रोध को जीतने का एक उपाय है वाणी पर सयम। यदि मन मे आवेश आ जाय तो भी वाणी पर कन्ट्रोल रखो और उस समय थोडी देर के लिये मौन हो जाओ।

यदि कोई व्यक्ति आवेश में आकर अपने पर क्रोध करता है तो उस समय सम्पूर्ण मौन रखना चाहिये। उस समय प्रत्युतर देने में झगड़े के बढ़ने की संभावना रहती है। एक बार मौन हो जाने पर सामने वाला व्यक्ति भी थोड़ी ही देर में शान्त हो जायेगा और उसे अपनी भूल का पश्चाताप होगा।

जो व्यक्ति छोटी 2 बातों में क्रोध करते हैं उनका जीवन क्लेश मय ही होता है।

क्रोध करने से अपनी आत्मा का स्वभाव विकृत हो जाता है और तुरन्त ही प्रशम का सुख नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार कड़वी दवाई के आस्वादन से मुख बिगड़ जाता है उसी प्रकार क्रोध करने से अपनी आत्मा मे विकृति आ जाती है।

इस प्रकार क्रोध के विपाको का विचार कर अपने को चाहिये कि क्रोध को अपने जीवन में से बहिष्कृत करें।

3 लोभ :—पूर्व कालीन महापुरुषों ने ठीक ही कहा है कि 'लोभ सर्व पापों का बाप है।" अर्थात सर्व दुष्कृत्यों को जन्म देने वाला लोभ है। हम देखते है कि ज्यो-ज्यो लाभ बढ़ता है त्यों त्यों लोभ देखने में आता है और लोभ के वश पड़ा व्यक्ति अपने हित अहित को भूल जाता है। लोभी व्यक्ति धन को ही सर्वस्व मान बैठता है और उस धन की वृद्धि के लिये वह अन्याय से नही डरता है। अनीति को ही धन प्राप्ति का साधन मानता है। ग्राहक को लूटने में उसे आनन्द का अनुभव होता है।

धन के लोभ मे पड कर व्यक्ति झूंठ बोलता है, खोटे माप तोल रखता है, टैक्स आदि राजकीय चोरी करता है,धन की प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के माया प्रपंच करता है। भोले व्यक्तियो को ठगता है। धान्य आदि का संग्रह कर बाजार में अनाज की कृत्रिम तंगी पैदा करता है और मन-माने भाव से वस्तुएं बेचता है।

महापुरुषों ने लोभ को सर्व आपत्तियों का स्थान कहा है। लोभी व्यक्ति उपार्जित धन का न तो उपभोग कर सकता है और न ही दान आदि में व्यय कर सकता है।

धन की तीन गतियां है दान, भोग और नाश। कृपण व्यक्ति कष्ट से उपार्जित धन को न तो दान में दे सकता है और न ही उसका उपभोग कर सकता है। ऐसे कृपण व्यक्तियों का धन अवश्य नाश पाता है।

धन में अत्यन्त लुब्ध बना व्यक्ति अपने अर्जित धन को भी नही भोग पाता है, वह तो धन के लिये भूख और प्यास दोनों सहन करता है। वह समय पर न तो भोजन करता है और न ही समय पर सोता है। उसके दिमाग में तो रात और दिन धन, धन और धन ही घूमता है।

अति लोभी व्यक्तियों की कैसी दुर्दशा होती है उसके लिये मम्मण सेठ का निम्नोक्त दृष्टान्त विचारणीय है।

एक दिन, वर्षा ऋतु में भयंकर मूसलाधार वर्षा हो रही थी, चारों ओर मेघ की गर्जनाओं से आकाश भयंकर बन चुका था। उसी बीच राजगृही नगरी के राजा श्रेणिक की महारानी झरोखे मे बैठी हुई नगर का दृश्य देख रही थी। चारों ओर पानी ही पानी नजर आ रहा था। सम्पूर्ण नगर शून्य अरण्य की तरह निर्जन बन चुका था अर्थात् नगर के मार्गों पर एक भी मनुष्य दिखाई नही दे रहा था।

नगर के बाहर नदी में भयंकर बाढ आई हुई थी और उस नदी में एक व्यक्ति उसे तैरता

हुआ दिखाई दिया जो नदी मे बहते हुये लट्ठो को किनारे पर ला रहा था।

रानी को उस व्यक्ति पर दया आ गई, उसने सोचा इसकी कैसी दयनीय स्थिति होगी कि वह नदी के भयकर प्रवाह मे से भी लकडियो को खीच रहा है। रानी तुरन्त राजा के पास पहुची और बोली राजन् आप देवो की दुनियां मे आनन्द मना रहे है और आपके प्रजाजनो की यह स्थिति! देखो, वह व्यक्ति भयकर बाढ मे अपने प्राणो की परवाह किये बिना लकडियो को खीच रहा है।

राजा ने उस दृश्य को देखा। उसका हृदय भी दया से आर्द्र बन गया। तुरन्त उसने अपने नौकरो को आदेश दिया और उस व्यक्ति का परिचय पुछवाया।

राजा के नौकर नदी किनारे आये और उसको पूछा कि तुम मौत की परवाह किये बिना इस भयकर बाढ मे क्यो कूद रहे हो?

उसने कहा मेरे घर पर दो बैल हैं परन्तु एक बैल के सीग नही है उसके लिये मैं प्रयत्न कर रहा हू।

नौकरो ने आकर राजा को बात कही तो राजा ने उसे बुलाकर कहा मेरे गोकुल मे से तुम्हे जो पसन्द हो वे बैल ले जाओ।

उसने कहा–मुझे ऐसे बैलो की जरुरत नही है मेरे बैल देखिये फिर बात कीजियेगा।

राजा श्रेणिक अपने मत्री जनो के साथ उस मम्मण के घर गया। मम्मण श्रेणिक महाराजा को अपने घर के अन्तिम कमरे मे ले गया।

वहा रत्न के दो सुदर बैल थे। रत्न के दिव्य प्रकाश से चारो ओर उज्जवल प्रभा छाई हुई थी। राजा तो आश्चर्य मुग्ध हो गया। राजा बोला अरे मम्मणा! इतनी सम्पत्ति होने पर भी तू यह क्या कर रहा है?

मम्मण बोला–परन्तु एक बैल के दो सीग नही हैं इसके लिये मैं यह प्रयत्न कर रहा हू।

राजा को बहुत ही आश्चय हुआ क्योकि उस बैल के शरीर पर जो रत्न जडे हुये थे उनकी कीमत तो सम्पूर्ण राज्य के दान से भी अधिक थी।

राजा ने पूछा–तू क्या खाता है?

मम्मण बोला—चवले का साग और सूखी रोटी खाता हू।

परिग्रह की तीव्र ममता को देखकर राजा को अत्यन्त दुख हुआ। इस परिग्रह की ममता के कारण वह मर कर 7 वी नरक मे गया।

ऐसी ही एक दूसरी घटना है।

अमेरिका मे एक अरबपति धनाढ्य सेठ था। वह एक बडे मकान मे रहता था। उस मकान मे एक बहुत बडा हाल था उस हाल मे पुन एक छोटा सा कमरा था। उस कमरे मे बडी तिजोरी थी। उस तिजोरी मे करोडो के मूल्य वाला जेवरात था।

वह प्रतिदिन शाम को 6 बजे अपनी तिजोरी को निरीक्षण कर 7 बजे बाहर निकल जाता था। उस हाल मे चारो ओर दरवाजे थे और उन पर चौकीदार पहरा देते थे।

एक दिन वह सेठ 7 बजे अपनी तिजोरी वाले कमरे मे पहुचा और अपनी सम्पूण रकम गिनने लगा। रकम गिनने मे सेठ को १॥ घटा लग गया पहरेदारो ने सोचा सेठ बाहर निकल गये होगे। अत सबने दरवाजे बराबर बन्द कर दिये।

सेठ अन्दर ही रहे और चिन्ता मे पड गये कि मेरा यह धन तो मेरी बीसवी पीढी मे ही समाप्त हो जायेगा और इसी चिन्ता मे सेठ को हार्ट एटक (Heart attack) आ गया और सेठ सदा के लिये चल बसे।

धिक्कार है ऐसे धन के मोह को कि अन्तिम समय में भी सेठ अकेले ही रहे और अकेले ही चले गये।

लोभी व्यक्ति का जीवन नीचे छिद्र वाले घड़े की भांति होता है। जिस प्रकार छिद्र वाले घडे में कितना ही पानी भरा जाय वह थोड़ी ही देर में खाली हो जाता है उसी प्रकार लोभी व्यक्ति को कितनी ही सम्पति क्यों न प्राप्त हो जाय परन्तु उसे कभी भी तृप्ति नही होती है। उसे अपने धन पर थोड़ा भी संतोष नही होता है।

इस दुनियाँ मे सबसे अधिक दु:खी कौन है? इसका जवाब एक ही है कि अढलक सम्पति का मालिक होने पर भी जो असंतोषी है, क्योंकि स्पृहा रहित सामान्य व्यक्ति भी महान सुख का अनुभव कर सकता है और स्पृहा मुक्त धनाढ्य व्यक्ति भी महान् दु:ख का ही अनुभव करता है।

अतिलोभी व्यक्तियों को शिक्षा देते हुये किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि :—

हजारों ऐश के सामान, मुल्ले और नौकर थे। सिकंदर जब गया दुनियाँ से, दोनों हाथ खाली थे।

8 मद :—मद अर्थात प्राप्त सम्पत्तियों का अभिमान। मद के ८ प्रकार है। १–जाति, २–कुल ३–रूप, ४–बल, ५–लाभ, ६–बुद्धि, ७–कीर्ति, ८–धूर्त विद्या। पूर्व के पुण्योदय से उत्तम जाति और उच्च कुल में जन्म हो जाय, कामदेव के समान सुन्दर रूप की प्राप्ति हो जाये, विशिष्ट शारीरिक बल, व्यापार आदि में कीर्ति तथा विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति हो जाय तो भी उनका मद नहीं करना चाहिये। अर्थात् अपनी उत्तम जाति उच्च कुल तथा सुक्ष्म बुद्धि की प्राप्ति द्वारा दूसरे का तिरस्कार नही करना चाहिये।

जैसे कि किसी कुरूप काले रंग के व्यक्ति को देख कर उसकी मजाक करना, उसे चिढ़ाना। किसी कमजोर व्यक्ति को देख कर उसे गिरा देना और मजाक करना आदि–आदि मद कहलाते हैं।

ज्ञानी महापुरुष फरमाते है कि अपने को जो यह मानव जीवन मिला है वह क्षण भंगुर है। इस जीवन में अल्पकाल के लिये रहने वाला है यौवन का वय। यह जल तंरग की भांति अत्यन्त चपल है। यह शरीर अनेक रोगों का घर है, न मालुम कब कौनसा रोग आ जाय। अत: व्यर्थ ही इन शक्तियों का अभिमान कभी नहीं करना चाहिये।

जिस वस्तु का हम मद अथवा अभिमान करते है वही वस्तु अपने लिये दुर्लभ बन जाती है। इतिहास के पन्नों पर हमें अनेक दृष्टान्त देखने को मिलने है।

१—उत्तम जाति के मद के कारण हरि–केसी को चांडाल के घर उत्पन्न होना पड़ा।

२—कुल के मद से मरीचि को कोटा कोटी सागरोपम तक इस संसार में भ्रमण करना पड़ा और अन्त में भी ब्राह्मण कुल में : देवानन्द की कुक्षीमें : ८२ दिन तक रहना पड़ा।

३—सनत्कुमार चक्रवर्ती को अपने रूप का मद उत्पन्न हुआ और उसी समय उनके शरीर मे कुष्ट रोग उत्पन्न हो गया।

४—श्रेणिक महाराजा ने गर्भवती मृगली का शिकार कर अपने बल का अभि-मान किया। जिससे उन्हें मरकर नरक में जाना पड़ा।

५—मोहम्मद गजनवी ने धन के लाभ के लोभ मे आकर इस देश पर सत्रह

वार आक्रमण किये और उस धन के ढेर को देख-देख कर अन्त मे वह पागल हो गया ।

६—तप के मद के कारण कुरगडु मुनि को तप मे भारी अन्तराय उत्पन्न हुआ था ।

७—विद्या के मद के कारण स्थूलभद्रजी अर्थ सहित ११ से १४ पूर्व के ज्ञान को प्राप्त न कर सके ।

किसी भी वस्तु का मद उसी वस्तु की प्राप्ति को दुर्लभ बना देता है । व्यक्ति जिस वस्तु का मद करता है, समय बीतने के बाद उसी वस्तु से उसे वचित रहना पडता है ।

अत पुण्य से प्राप्त किसी भी शक्ति का मद नही करना चाहिये ।

५ मान—मान का अर्थ है झूठा आग्रह। मान के वश हो जाने पर व्यक्ति दूसरे सत्य को भी नही स्वीकारता है । मद और मान मे यही अन्तर है कि स्व-स्वामित्व की वस्तुओ का गव करना यह मद है । मद मे दूसरे हीन व्यक्तियो को नीचे गिराने की वृति होती है जबकि अवाप्त वस्तुओ का अभिमान करना वह मान कहलाता है ।

मान लो अपने पास तीक्ष्ण बुद्धि है । उस बुद्धि का अभिमान करना मद कहलाता है और अपने पास तीक्ष्ण बुद्धि न होने पर भी मैं भी कुछ जानता हू I am some thing का व्यवहार करना-वह मान कहलाता है ।

मान यह विनय का नाशक है और विनय के नाश होने पर व्यक्ति के सभी गुण नष्ट हो जाते है । अभिमानी व्यक्ति का जीवन ही भिन्न होता है । वह बात बात में झूठा अभिमान करेगा ।

विनय यह विद्या का, ज्ञान का साधन है अत विनय के नाश से विद्या का भी स्वत ही नाश हो जाता है ।

मानी व्यक्ति अपने वडिल वग तथा स्वजन व्यक्तियो के साथ औचित्य पालन का अवश्य भग करता है और औचित्य के भग से कीर्ति का नाश होता है ।

मान सब गुणो को नाश करता है । मानी व्यक्ति अपना मान भग होने पर क्रोध करेगा और क्रोध से रोष और रोष से द्वेष भाव पैदा होगा ।

मान के कारण ही दुर्योधन का नाश हुआ था । मान एक आतरिक शत्रु है । अत न मालुम कब अपनी आत्मा ऊपर हमला कर बैठे । अत सदैव सावधान रहना चाहिये और मान के त्याग के लिये सदैव प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

६ हर्ष—सामान्यतया हर्ष का अर्थ होता है मानसिक आनन्द परन्तु अन्तरग शत्रुओ के अन्तर्गत हर्ष का अर्थ निष्कारण अन्य प्राणियो को आपत्ति मे डाल कर मन मे आनन्द का अनुभव करना ।

दूसरे व्यक्ति को आपत्ति मे डाल कर अथवा देख कर खुश होना यह अधम पुरुषो का लक्षण है। उत्तम पुरुष तो जगत के जीव मात्र को आत्मवत दृष्टि से देखते हैं और यथाशक्ति अन्य के दुख को दूर करने का प्रयत्न भी करते हैं ।

नीति मे ठीक ही कहा है कि मयुर बादलो की गजनाओ से प्रसन्न होते हैं वैसे ही सज्जन पुरुष दूसरे का कल्याण कर खुश होते हैं जबकि दुर्जन पुरुष अन्य को तकलीफ मे डाल कर आनन्द का अनुभव करता है ।

अन्य को दुखी देख कर खुश होने वाला व्यक्ति भविष्य मे भयकर दुख का भाजन बनता है ।

श्रेणिक ने गर्भवती हरिणी को एक ही बाण मे भेद डाला । निरपराधी हरिणी की हत्या

कर श्रेणीक ने अत्यन्त हर्ष का अनुभव किया और इसी हर्ष में नरक के आयुष्य कर्म का बन्ध हो जाने से उन्हे नरक में जाना पड़ा।

अंतरंग शत्रुओं को जीतने के उपायः–

काम क्रोधादि अंतरंग शत्रुओं के स्वरूप को जानकर उन पर विजय प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील बनना। यह सज्जन पुरुष का लक्षण है।

१—काम को जीतने का उपाय हैं—ब्रह्मचर्य पालन। शरीर के अतिन्यता का विचार। कामोत्तेजक आहार तथा मद्यपान का त्याग, सिनेमा अश्लील साहित्य आदि का सम्पूर्ण त्याग।

२—क्रोध को जीतने का उपाय हैं–क्षमा। क्षमाशील महापुरुषों के जीवन प्रसंगों को याद करना। क्रोध के कटु विपाकों का चिन्तन। यथाशक्ति मौन का सेवन।

3—लोभ को जीतने का उपाय हैं–कहावत है संतोष धन की प्राप्ति के बाद अन्य सब धन धूल समान लगता है। जीवन की क्षण भंगुरता आदि का विचार।

४—मद को जीतने का उपाय हैं—प्राप्त सामग्रियों की क्षण भगुरता का विचार। यदि अपने पास सूक्ष्म बुद्धि हो तो विचार करें कि पूर्व के महापुरुषों के आगे मेरी बुद्धि क्या है। यदि धन समृद्धि अधिक हो तो विचार करें यह तो नाशवत सम्पत्ति है! मुझे यहीं छोड़ कर जाने का है। फिर व्यर्थ ही उसका गर्व क्यों करूं। इत्यादि।

५—मान को जीतने का उपाय हैं विनय, माता–पिता विद्या गुरु तथा वडिल जनों के प्रति नम्र तथा समर्पण भाव रखना।

६—हर्ष को जीतने का उपाय हैं—अन्य के दु.ख को अपना दुख मानना। सर्व जीवों के प्रति आत्मीय भाव रखने से हर्ष को जीता जा सकता है।

अंतरंग शत्रु जो अपने बाह्य और अंतरंग जीवन में अशान्ति की होली सुलगाते है उन पर विजय प्राप्त करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। इन शत्रुओं के प्रति थोड़ी भी उपेक्षा अपनी आत्मा को बरवादी के गर्त्त मे गिरा देती है।

अंतरंग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से आत्मा बलवान बनती है। इस प्रकार अंतरंग बल बढने से बाह्य दृष्टि से भी अनेक लाभ प्राप्त होते है।

卐卐卐卐

आप महान् बनना चाहते हैं तो नम्र और विनयी बने।

—रामकृष्ण परमहंस

हृदय की विशालता ही उन्नति है।

0 0 0 0

नम्रता, प्रेमपूर्ण व्यवहार तथा सहनशीलता से मनुष्य तो क्या, देवता भी वश में हो जाते हैं।

—बाल गंगाधर तिलक

मानवता
जीवन की अभिन्न आवश्यकता

□ साध्वी श्री मनोहर
श्री जी. म. सा

सज्जनों, न किसी को गम भरा ससार दो,
न ही किसी को छलावट का उपहार दो।
महावीर या गौतम बनने की गर लालसा है तो,
हर आदमी को आदमी सा प्यार दो॥

भारतवर्ष एक प्राचीन और मानवता का प्रतीक राष्ट्र है। भारतीय संस्कृति में मानवता को जितना महत्व प्राप्त है अन्यत्र परिलक्षित नहीं होता। विश्व में मानव से बढ़कर बहुमूल्य या रमणीय वस्तु कोई दूसरी नहीं है। किन्तु हर मानव में मानवता की उपलब्धि दुर्लभ है। इसी लिये तो किसी के लिये यह संसार अनोखा है किसी के लिये धोखा है तो किसी के लिये धोखा है। नई दुनिया है नई गतिविधि है नूतनता पुरातन को निराकार करती जा रही है। सोने और चांदी का संसार दमक-दमक कर छिपता जा रहा है मिट्टी और चीनी की कौंध वृद्धिगत है। ठीक इसी तरह मानव का स्वात्म तत्व रसातल में डूबता जा रहा है मिट्टी तुल्य भौतिकता की धूम मचा रहा है। आज असलियत से परहेज है और इमीटेशन का बाजार तेज है। मनुष्य के हृदय में तो, घृणा का सागर है और चेहरा मुस्कानों का उफनता गागर। युगीन पुकार है आज इन्सान की कमी नहीं, कमी इन्सानियत की जरूर है। क्षेत्रीय दूरियां तो मिटती जा रही हैं लेकिन दिल एक दूसरे से कोसों दूर हैं।

आधुनिक सभ्यता सम्पन्न मानव के कपड़े तो दुग्धवत श्वेत, स्वच्छ व प्रेसयुक्त हैं किन्तु मन कालिमा की सलवटों का अकूट खजाना। विद्युत प्रकाश चहुं ओर प्रदीप्त है पर आत्मप्रकाश एकदम मंदतम। पुश्त-दर-पुश्त खून की तमन्ना से जो ताज कमाया पर पहली ही पीढ़ी पारस्परिक फूट की वजह से खून-खराबा, शोर-शराबा मचाने लगी। छत्रपति शिवाजी ने सिंहगढ़ विजय के समय कहा था "गढ आयो पण सिंह गयो" यही उक्ति आज चरितार्थ हो रही है। जनमानस आध्यात्मिकता से परे होकर भौतिकता में मन्त्रमुग्ध बन व्यवहारिक ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ मैत्री का ज्ञान और इन्सानियत का ह्रास होता जा रहा है जो कि दूषित शिक्षा पद्धति का परिणाम है। आधुनिक शिक्षा महज नौकरी हेतु भिक्षा है जिसमें विचार कम प्रचार ज्यादा है। अतः अधिकतर शिक्षित छात्र भाडन दादा हैं क्योंकि "एज्यूकेशन का अर्थ हो गया है" ए-ज्यू-के-सुन, पछे पटन अर समझन गो केवे ई कुण। अनुशासन और सभ्यता का सूर्य इस कदर ढल गया कि छात्र गुरु शिष्य पिता दादा का मायने ही बदल गया। जो दुनिया भर के इतिहास को जानते हैं वे स्व-इतिहास से सर्वथा अन्जान। उनकी समझ से मात्र कोन ही ज्ञान की खरी कसौटी है। उद्दण्डता, अनुशासन-हीनता के कारण ही तो आज विश्वविद्यालय विष-विद्यालय और न्यायालय बन गये हैं न्याय-लय। जहां मानवता की बू मीलों

दूर है। शिक्षण में जब तक सुन्दर संस्कारों का अमूल्य पुट न होगा तब तक अन्तर आनन्द और शांति की अनुभूति नही हो सकती। जीवन मे हमारे शुभाशुभ कृत्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। महावैज्ञानिक एलमर ग्रेटसे ने एक दफा यूनाइटेड स्टेट की राजधानी वाशिग्टन की एक प्रयोगशाला में विभिन्न स्वभाव वाले व्यक्तियो का श्वांस एक कांच पर लिया। उन अपरिचित व्यक्तियो मे कोई क्रोधी, कोई लोभी, ईर्ष्यालु, दुराचारी थे, कई सज्जन भी थे।

यह निष्कर्ष कांच पर उभरे श्वांस परीक्षण के दौरान लिया गया। स्पष्ट है कृत्य व विचार सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणुओं को भी प्रभावित करते है फिर वाह्य-मण्डल क्यों न प्रतिस्पन्दित हो। जीवन के स्वर्णिम प्रभात से ही उज्ज्वल आदर्शमय शुभ संस्कारो का वपन अत्यावश्यक है। महावीर, अभिमन्यु, शिवाजी, नेपोलियन-वनराज चावड़ा जैसे सपूत महापुरुषों को मां के दूध के साथ ही शुभ सस्कार मिले थे। भगवान महावीर मे स्वयं त्रिशला मा ने अद्वितीय प्रेरणायुत संस्कार भरे थे फलत: वह करुणा सागर जगत त्राण अरिहंत वन गया उनके स्वर मुखरित हुए—अहिंसा परमोधर्म:। क्षमावीरस्य भूपणम्। फूल वन कर जियो शूल वन कर नही।

इन गुणों के विकास से ही मानवता सुशोभित होती है। एक अंग्रेज विचारक के शब्दों में:—

Never does the human soul appear so strong as when it forget revenge and dares to forgive an injury. मानव जब दूसरों की त्रुटियों को माफ कर उसके अपराधो को भूल जाता है उस वक्त उसकी आत्मा वलवान वन जाती है वही आत्मा मानवता का मूर्तिमन्त प्रतीक माना जाता है। उक्त भूमिका निभाने में प्रारंभिक संस्कार बहुत कामयाब होते है।

महारानी मदालसा महाभारत में योगी माता के नाम से पहचानी जाती है। अपने सात पुत्रों को पालने मे झुलाते-झुलाते ही वैरागी वना दिया था उसके वैराग्य स्फूर्त शक्तिशाली वाक्य थे—

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि,
संसार माया परिवर्जितोऽसि।
संसार स्वप्नं त्यज मोह निद्रां,
मदालसा वाक्यभुवाच पुत्र ॥

कितने शालीन और उच्च थे उनके विचार। प्रारम्भ से ही प्राप्त संस्कारों ने सातों पुत्रों को उच्चकोटि का महान त्यागी वना दिया। पिता को चिन्ता हुई, राज्य का क्या होगा उत्तराधिकारी कौन होगा। महारानी को मीठा उपालंभ दिया। महारानी ने पति की इच्छापूर्ति हेतु आठवे पुत्र को पालने के अन्दर ही इतने तेजस्वी संस्कार सांचे में ढाल दिया कि आश्चर्य होगा। वह वालक एक तेजस्वी, प्रतापी, नीतिवान और प्रजापालक राजा वना। स्वर्ण में मानवता का रत्न जड़ देने वाली उस महान माता को धन्य है।

जीवन वीणा के त्रितार विचार, वाणी और व्यवहार के मर्यादित समन्वित संयोग से ही प्रेम की सुरीली, रसीली, नशीली, आकर्षक झंकृति पैदा हो सकती है। आज पायल की झनकार, प्लेटो की कतार, मिलावट का वाजार और मोटरकारों की भरमार अवश्य मिलेगी पर प्रेम की मृदु टणकार वहुत कम प्रतीत होगी। जव कि प्रेम पूर्ण मानवता ही अमरता और मधुरता है। मानवता संजीवनी शक्ति है इसका अमृतपान ही जीवन का शृङ्गार, संस्कृति का मूलाधार है। □

जनाब चाबी नीचे छूट गई ?

□ सा श्री प्रियकरा श्री जी म
(पू मनोहर श्री जी म सा
की सुशिष्या)

विज्ञापन के इस युग में आज का मानव भौतिक चकाचौंध की भुलैय्या में फँसकर आत्मजय मूल-स्थिति के प्रति बेपरवाह बन जाता है पर अन्त में इसका जबदस्त अहसास करता है। मैंने पढा है—

एक बार कुछ सज्जन अमेरिका में एक बहुत ऊँची अनेक मंजिली बिल्डिंग देखने के लिए गये। अमेरिका की एम्पायर स्टेट बिल्डिंग ससार की सबसे ऊँची इमारत मानी जाती है। यह 1462 फुट ऊँची है तथा 102 मंजिली है। इसमें लगभग 25000 व्यक्ति रहते हैं। इस विशालकाय गगन-चुम्बी भवन का मालिक एक ऐसा व्यक्ति है जिसने पहले चार डालर साप्ताहिक मजदूरी पर काम शुरु किया था। 1954 में इस भवन के निर्माण पर उसने 5 करोड 10 लाख डालर खर्च किये।

हा, तो बन्धुओ, जब वे दर्शकगण बिल्डिंग में पहुचे तो दरबान से कहा—हमें सबसे ऊपर की मंजिल का वह कमरा देखना है जिससे पूरा वाशिंगटन शहर देखा जा सकता है। दरबान ने कहा—अभी लिफ्ट बन्द है, बिजली नही है और पैरो से इतनी मञ्जिल तक चढना बहुत मुश्किल है।

दर्शक सज्जनो ने कहा—भाई, हम तो बहुत दूर से इसी बिल्डिंग को देखने के लिए आए हैं और आज शाम को ही वापस जाना है कैसे भी हो, चाहे पैरो से चढकर ही जाना हो, हमें तो ऊपर की मञ्जिल तक जाना ही है। बहुत आग्रह करने पर विवश दरबान उनको सीढियो से ही ऊपर लेकर चलने पर राजी हुआ। एक मञ्जिल चढे कि उनमें से एक ने कहा देखो, ऐसे तो इतनी मञ्जिल चढना बहुत कठिन लगेगा कुछ अपनी-अपनी बातें सुनाते चलो ताकि समय भी कटे और चढने की थकावट भी कम महसूस हो।

प्रस्ताव सभी ने मजूर कर लिया और लगे अपनी-अपनी कहानी सुनाने। सुनाते-सुनाते काफी समय हो गया, कई मञ्जिलें पार कर गये, कैसे भी करके ऊपर की मञ्जिल में पहुचे तब तक सब की बातें समाप्त हो गई और दरबान से बोले—अब तुम भी कुछ अपनी बात सुनाओ।

दरबान ने मुह लटकाकर कहा—मैं क्या सुनाऊँ। जिस कमरे को देखने के लिए आप लोग इतनी मंजिलें चढे है उसकी चाबी तो मैं नीचे ही भूल आया।

सभी एक दूसरे का मुह ताकते रह गये। इतना कठिन परिश्रम पानी में मिल गया। इतनी मंजिलें तो पार कर ली पर चाबी नीचे ही छूट गई! सब किया कराया गुड गोबर!

आज वैसे ही कुछ दशा हम लोगो की हो रही है। क्रिया या बाह्य परिश्रम के साथ-साथ सद्ज्ञान आत्मदर्शन अत्यावश्यक है। कहा है—"ज्ञान क्रियाभ्या मोक्ष" दोनो के समन्वित योग से ही मोक्ष हो सकता है। सद्ज्ञान के अभाव में जीवन की नीव खोखली है।

★

पुण्य तत्व का परिशीलन

□ पं० श्री वीरसेन विजयजीगणि, बादनवाडी

विश्व विश्रुत प्रभु महावीर स्वामीजी ने नव-तत्वों का दान दिया। इसलिये इन नवतत्वो को वताने वाले प्रभु की नवअंगो में पूजा की जाती है। इसी नव तत्व में प्रभु ने पुण्य तत्व आदि वताये।

पुण्यतत्व वताकर प्रभु ने अपने ऊपर महान उपकार किया। निर्धन हो या धनवान हो, गरीब हो या तवंगर दोनों अवस्था में यह औषधि का काम करता है।

समाधि शांति और संतोप की त्रिपथगा यानी गंगा बहाकर, तन का ताप, मन का संताप और आत्मा का पाप नाश करने का महान सोल्युशन प्रदान करता है।

आप निर्धन हो और अपने भाई मामा ताथा स्वजन-सम्वन्धी सार्धमिक को सुखी देखकर ईर्षा होती हो, तिरस्कार आता हो, द्वेप होता हो, तव यही सोचे कि यह तो उसका महान पुण्य का उदय है। मेरे पास पुण्य नही है इसके लिये मैं निर्धन हूं। यह चितन न होगा तो वह पुण्यशाली होगा ईसके लिये वह धनवान वनता जायेगा और आप ईर्षा-द्वेप आदि करके पापवान वनते जायेगे।

एक भाई खाने वैठे थे। भोजन स्वादिष्ट, गुणाढ्य और ताजा था। परोसने वाली उनकी पत्नि थी फिर भी उनका मुख उदासीन था।

पत्नि ने पूछा—आप उदासीन दिखते हो, क्या कारण है? पति ने कहा—पड़ौस के घर मे ऑफीसर रहता है उसने साईकिल वेचकर स्कूटर लिया है।

पत्नि ने कहा—वाजू के घर में कुछ भी होता हो, उससे अपने को क्या करना? आप टेन्शन वढाकर, चिंता करके, ईर्षा करके खून सुखा रहे हो?

पुण्यतत्व को न समझने वाले के पास ऐसा विचार होता है।

यदि आप धनवान हो, पुण्यवान हो और आपको अभिमान आ जाता हो, गर्व से सिर उन्नत वन जाता हो, तव सोचें यह तो पुण्य का फल है। जव तक पुण्य है तव तक रहने वाला है।

आप ही सोचे जिस दुकान पर वैठकर २५ साल तक कुछ प्राप्त नही हुआ और आपका भाग्य जग गया तो एक ही साल मे लखपति वनोगे कि नही?

पुण्य के वल पर प्राप्त होती है तो फिर पर-तंत्र लक्ष्मी पर अभिमान क्यों करू ?

पंढरपुर में विठोवा की सवारी निकली। घोड़े पर पालकी रखी थी और सवारी आगे चलने लगी। लोग तो आरती उतारने लगे, पैसा डालने लगे। नमस्कार-सत्कार करने लगें। देखने वालों की भीड़ भी वहुत लगी थी।

घोड़े ने सोचा अहाहा ! लोग मुझे नमस्कार करते हैं। बस अभी तो सवारी उतरने दो। इन सभी धनवानों की दुकान पर जाकर गुड़ आदि जो खाना होगा खा लूंगा।

सवारी उतरी। घोड़ा तो खुश होता, अभिमान से उन्नत हो गया। जैसे ही दुकान में गया और मुँह डाला कि लकड़ी के प्रहार से मार खाने लगा।

उसको यह नहीं मालुम था कि ऊपर विठोबा-की पालकी थी तभी लोग नमस्कार करते थे। पालकी उतर गयी कि सब खेल खत्म।

देखो ! वस्तुपाल-तेजपाल जैसे पैसे-मोहरें लुटाने गये वहा से नयी मोहरें मिली।

उसे ठोकर लगे तो मोहरे मिलें और आप जैसे को मेरे जैसे को कोई ठोकर लगे तो सैप्टिक हो जायेगा।

पुण्य की बलिहारी है, नसीब का खेल है।
मिट्टी मे से धन बने, धन की मिट्टी बन जाय।

एक ब्राह्मण पुत्र था। बहुत ही गरीब था। कोई धंधा रोजगार नहीं चलता था। उसने सोचा बिना दाम का धंधा है वैद्य का। चलो ! यही करें।

गौरी शंकर ने निश्चित किया, एक नियम वैद्य का है, "पेट साफ तो रोग साफ।" लाल, पीली, सफेद शीशी में एक ही गोलियो को भर दिया जो पेट साफ करने की थी।

दवाखाना खोलकर बैठ गया। एक बीमार आया। पेट मे बहुत दर्द था। बहुत वैद्यों की दवायें लीं लेकिन नही मिटा। आखिर इस वैद्य के पास आकर गोलिया ली, दर्द मिट गया। फिर क्या कहना ? स्त्री तो लाउडस्पीकर है। पुरुष टेलीफोन है। एक बुढ़िया ने यह बात पूरे गाव मे फैला दी।

एक दिन की बात है कुम्हार का गधा खो गया। वह भी गौरीशंकर के पास आया और गधा खो जाने की बात बतायी। सुनकर गौरीशंकर ने सोचा "लगा तो तीर नही तो तुक्का"। नेपाला की गोलिया दी जिससे कुम्हार को दस्त लगने लगे।

मकान से बाहर का चक्कर लगाना प्रारम्भ हो गया। आखिर एक बार सडाम गया तो गधा मिल गया।

घर घर मे गली-गली म प्रत्येक के मुख से गौरीशंकर की गोलियो की और उसकी प्रशंसा के फूल बिखरने लगे।

रानी के अंत पुर मे भी यह बात फैल गयी थी। रानी से राजा नाराज हो गया था। अनबन हो गयी थी। रानी ने सोचा चलो ! चमत्कारिक गोली वाले गौरीशंकर के पास। वहाँ पर आकर मन की बात बता दी। गौरीशंकर ने वही गोलिया दी। बस ! रानीजी को इतनी टट्टिया होने लगी कि आखिर रानी सीरियस हो गयी। शरीर तो धोली पूणी जैसा हो गया।

सभी आने लगे, राजा ने सोचा अंतिम अवसर पर तो मुझे भी जाना चाहिये।

राजा को आया देखकर राणी तो प्रमुदित हो गयी। राजा ने रानी को बुलाया, प्रेमालाप किया। बस् रानीजी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। बाहर से और अंदर से भी। राजा भी प्रतिदिन आने लगा।

रानीजी ने गौरीशंकर को मोहरो से पुरस्कृत किया।

गौरीशंकर का पुण्य का पीरीयड जोरदार चलने लगा।

पूरे गाँव मे तो बस् ! गौरीशंकर की ही बात।

एक दिन की बात है। शत्रुराजा ने आक्रमण किया। प्रधान-सेनापति-नगर रक्षक सभी विचार में पड़ गये। दिग्मूढ हो गये। क्या करना ? कुछ समझ मे नही आता था।

अचानक जैसी बिजली चमके वैसे एक विचक्षण वणिक ने कहा-गौरीशंकर को बुलाओ वह चम-

त्कारिक व्यक्ति है ।

राजा ने राजदूत द्वारा गौरीशंकर को बुलाया और स्वागत किया ।

गौरीशंकर ने सविनय पूछा :—सेवक को क्यों याद किया ?

शत्रुराजा चढ़ायी लेकर आया है । अब क्या करना ? कोई रास्ता नहीं सूझता । आप रास्ता बताये ।

गौरीशंकर ने कहा मेरे पास तो चमत्कारिक गोलियाँ हैं और कुछ नही । लड़ने वाले सैनिकों को दे देना । आप नही लेना । गौरीशंकर समझता था रानी को दिया तो सीरियस हो गयी कभी ऐसी दशा हो गयी तो मुझे फांसी मिलेगी ।

राजा ने कहा ठीक है, दे दो सबको ।

सैनिकों ने गोलियां खायी और पादर का चक्कर लगाने लगे ।

पादर में रहा शत्रुराजा का सेनापति सोचने लगा अपन की कुछ भूल हुई है, इस राजा की सेना तो विशाल है । सुबह से संडास का काम शुरू हुआ जो अभी तक समाप्त नहीं हुआ । चारों ओर सैनिक ही सैनिक है ।

सेनापति ने राजा से सलाह–मशवरा किया । यहां से भाग जाये । लड़ाई नही करनी है ।

बस ! यही बात हुयी ।

सुबह राजा को खबर मिली, शत्रुराजा सेना लेकर वापस चला गया ।

बस ! अब तो गौरीशंकर की चारों ओर प्रशंसा होने लगी । ससम्मान बुलाया और चार पांच गांव भेट में दिये । यह पुण्य का चमत्कार !

पुण्य नव प्रकार से बांधा जाता है । ४२ प्रकार से भोगा जाता है ।

पुण्य चार प्रकार का होता है, पुण्यानुबंधी पुण्य, पापानुबंधी पुण्य, पुण्यानुबंधी पाप और पापानुबंधी पाप ।

इसी पुण्यतत्व का चिंतन–विचार–विमर्श कर पुण्य का पाथेय बांधे यही शुभाशा !

> अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह
> इन कल्याणदायक पांच महाव्रतों को स्वीकार करो ।
>
> —महावीर स्वामी

अज्ञानता का परिणाम

आचार्य विजयइन्द्र दिन्न सूरिश्वरजी महाराज के आज्ञानुवर्ती सुप्रसिद्ध

प्रवचनकार मुनि श्री नित्यानन्द विजयजी म सा.

****

एक नगर मे एक सेठ रहते थे। उनका थोक वस्तुओ का व्यापार था। जब जिस वस्तु का भाव कम होता था वे खरीद कर अपने गोदाम भर लिया करते थे और जब बाजार मे उस वस्तु की कमी होती और भाव बढते तो अवसर का लाभ उठाकर माल बेच दिया करते थे इसमे उनको भारी मुनाफा होता।

एक बार किसी दूसरे नगर से लकडियो के व्यापारी आए हुए थे उनके पास चदन की लकडिया थी। सयोगवश सेठजी से उन व्यापारियो का मिलना हो गया। मोल भाव करने पर सेठजी को इन लकडियो का सौदा बहुत ही सस्ता जान पडा और उन्होने सारी लकडिया खरीदकर अपने गोदाम भरवा दिए। सेठजी मन ही मन आज के सौदे से बहुत प्रसन्न थे। सेठजी ने विचार किया कि जब बाजार मे भाव बढेगे तो महगे दाम मे इसको बेच दू गा।

इसी बीच सेठजी किसी व्यापारिक कार्य से बाहर गये हुये थे। बरसात का मौसम चल रहा था। पिछले कई दिनो से लगातार वर्षा हो रही थी। घर मे सेठानी जी को ईधन की कमी महसूस हुई उन्होने घर मे इधर-उधर तलाश किया किंतु निराशा हाथ लगी। अब समस्या यह थी कि भोजन कैसे पकाया जाय ? अचानक सेठानी जी का ध्यान गोदामो की ओर गया। मन म आया कि सभव है सेठजी ने थोक सामान के साथ बरसात के समय लकडियो का भी सग्रह किया हो। गोदाम खोलने पर सेठानीजी की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होने सेठजी की दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता की भूरि–भूरि प्रशसा की कि सेठजी हर वस्तु का सग्रह करके रखते हैं। आज यदि ये लकडिया उनके द्वारा सग्रह नही की गई होती तो मुझे बरसात मे बडी कठिनाई का सामना करना पडता और पडौसियो मे हमारी स्थिति हास्यास्पद होती।

अब सेठानी जी को कोई चिंता नही थी, भरे गोदाम सामने थे। धीरे–धीरे लकडिया समाप्त होती रही और सेठजी के आने से पहले गोदाम लकडियो से खाली हो चुके थे। सेठजी आए और अपने व्यापार मे लगे रहे। गोदामो को देखने की कोई जरूरत नही समझी, क्योकि अभी बाजार मे चदन के भाव सामान्य थे।

दो मास बाद बाजार मे चदन का भाव बढा, साथ-साथ सेठजी की प्रसन्नता बढी। एक दिन सेठजी ने माल बेचने का निश्चय किया और सेठानी जी से चाबी लेकर खुशी–खुशी गोदाम खोले, किंतु वह खुशी क्षणिक थी। सेठजी सन्न रह गए। गोदाम तो बिल्कुल खाली पडे थे। चदन का नामो निशान भी नहीं था केवल उसकी सुगन्ध गोदामो मे भरी हुई थी। सेठजी घबराए, सिर पकड लिया। सेठानी जी से उन्होने कहा इन गोदामो मे चदन

था वह कहा गया ? सेठानी ने उत्तर दिया चंदन के वारे में मैं कुछ नही जानती। इन गोदामों में तो लकड़ियां ही लकडियां भरी हुई थी। आप वरसात के समय दूसरे नगर गये हुए थे उसी वीच मुझे ईंधन की कमी महसूस हुई और मैंने सारी लकडियां जला डाली पर मुझे चंदन तो कहीं इसमे नजर नही आया।

सेठजी रोप मिश्रित तीव्र स्वर में बोले—वह लकड़िया ही तो चदन की थी उसी के वारे मे तो तुम से पूछ रहा था। तुमने भी गजब कर दिया। तुम्हे सामान्य लकड़ी और उस सुगन्धित चंदन की लकडी मे अंतर ही समझ नही आया। सेठानी ने तुनक कर लापरवाही से जवाव दिया—मुझे क्या पता कैसी लकड़ी थी ? मै तो केवल इतना ही जानती हूं कि लकड़ी जलाने के काम में आती है। जरूरत पड़ने पर क्या करती ? आप तो वाहर थे घर खाना वनाना मुश्किल था। मैने उन लकड़ियो का सदुपयोग कर रोटियाँ ही तो वनाई है। कोई गलत काम तो किया नही।

सेठजी ने अपना सिर पीट लिया। अव वे अपनी अज्ञानी सेठानी को क्या समझाएं कि जिन लकड़ियों को उसने जलाकर राख कर दिया है, उनसे लाखों रुपये कमाए जा सकते थे उनसे दवाइयां वनाकर हजारो-लाखों रोगियों को रोग रहित वनाया जा सकता था। किन्तु अव पछताने से क्या होता ?

इन चदन की लकड़ियो की सी दशा हमारे तन, धन और यौवन की है। हमारा मानव तन चंदन की लकड़ियों के समान वहुमूल्य है। जैसे चंदन की तुलना सामान्य लकड़ियों से नही की जा सकती उसी प्रकार इस मानव जीवन की तुलना अन्य योनियो के जीवन से नही की जा सकती। इस मानव-तन का सदुपयोग करें तो सर्वोच्च सर्वश्रेष्ठ पद मुक्ति को प्राप्त कर सकते है, संसार रूपी समुद्र से पार हो सकते है। किन्तु अपनी अज्ञानता से हमने इसकी वहुमूल्यता—दुर्लभता को नही परखा है और यूं ही सामान्य कार्यो में छोटी-छोटी वातों में राग द्वेष में समय व्यतीत करते जा रहे है और अपना चदन सा वहुमूल्य जीवन खोते जा रहे है। लगातार वही वेवकूफी कर रहे है जो सेठानी कर रही थी।

आज आवश्यकता है चंदन के समान वहुमूल्य जीवन को पहचानने की और पहचान कर उसका सदुपयोग करने की, जिससे भवसागर पार किया जा सके वरना सेठ की तरह सिर पीटते रहेगे।

पर पीड़ा निवारण के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना मानवता का मूल मंत्र है।

परोपकार करना पुण्य कर्म है और दूसरों को पीड़ा देना पाप है। —वेद व्यास

"प्रेरणा पीयूष"

पू. उपा पुण्यविजयजी गणिवर
(पू श्रा भद्रंकरसूरिजी म के शिष्यरत्न)

1 व्यसन की लीला

था तो स्कूल का माननीय शिक्षक। शरीर शक्ति इतनी अच्छी थी कि प्रतिदिन शिक्षण देने के लिए चार मील चलकर शहर मे आते थे।

मगर जैसे 'घुण' नामक कीट जतु अच्छा लक्कड खराब कर देता है। हरा भरा पेड भी 'उधई' नामक जतु से शुष्क होकर गिर जाता है। उसी तरह वह शिक्षक भी एक दिन 'भाग' ज्यादा प्रमाण मे लेने से इस नश्वर दुनियाँ को छोडकर स्वर्ग मे चले गये याने मृत्यु की शय्या मे सदा के लिए सो गये।

जीवन मे चाय, पान आदि कोई व्यसन नही था। मगर एक भाग को सामान्य व्यसन से मनुष्य जीवन गवा दिया। जीती हुई बाजी पराजय मे पलट गई।

यह दुर्लभ मनुष्य तन धर्माराधन के लिए मिला है। अत आपने अपने पुष्प जीवन म व्यसन का दुर्गुण प्रवेश कर लिया हो तो शीघ्र निकाल कर सद्गुण के पुष्प जीवन बाग म विकसित करें

2 अज्ञानता ही अधेरा

एक आदमी जन्म से दरिद्र था। एक दफे उसको एक सत महात्मा का समागम हो गया।

उनकी रात सेवा करने लगा। सत ने एक दिन पूछा वत्स तुझे क्या चाहिये ?

परोपकारिन् ! मैं जन्म से दुखी हू। कभी जीवन मे सुख का श्वास नही लिया निर्भागी ने कहा। सत ने कहा, सत्नात्मा ! यह पारसमणि मैं तुझको देता हू। लोहे को स्पर्श करने से स्वर्ण हो जायेगा। जितना स्वर्ण चाहिये उतना बना देना। ६ महीने बाद मुझे वापस दे देना। निष्पुण्यक आदमी सोचने लगा। अभी बाजार मे लोहे का भाव ज्यादा ह। लोहे का भाव कम होगा तब स्वर्ण बना लूगा। रोजाना ऐसा विचार करते-करते, छ महीने का समय पूर्ण हो गया। सत ने पारसमणि ले लिया। निर्भागी गरीब का गरीब रहा। अपन को भी परमात्मा की महती कृपा से पारसमणि रूप मनुष्यभव कोटिभव दुर्लभ ऐसा मिल गया। मगर अज्ञानता एव प्रमादवश

होकर धर्म रूप लोहे के साथ स्पर्श नहीं करके विषय-कषाय में मस्त बनें। आयुष्य खत्म होने पर आत्मा दुर्गति के द्वार पर चला जाता है। पीछे निर्भागी आदमी की तरह बार-बार पश्चाताप करता है। अतः सम्यग् ज्ञान से मनुष्य भव की कीमत समझकर धर्म की आराधन मे लग जावे।

3. ईर्ष्या-ज्वाला से दूर रहें :

आदमी कितना भी अच्छा हो, किन्तु उनके जीवन-उपवन में किसी भी अवगुण का हिम पड़ता है, तो जीवन-बाग नष्ट हो जाता है।

काना नामक प्रजापति संतोषी एव सरल था। दिन मे दो-तीन रुपये की कमायी हो जाय, पीछे सारा दिन-रात प्रभु-भजन मे मस्त हो जाता था।

उसके पास जीवन-निर्वाह के लिए एक गधा था जिसके द्वारा आजीविका चलाता था।

काना के घरके पास रामू रहता था। बैल द्वारा तेल आदि बनाकर अपनी वृत्ति चलाता था।

रामू लोभी एव ईर्ष्या दोष से युक्त था। काना का सुखमय जीवन देखकर रामू के नयन ईर्ष्या से आग बबूला हो जाते थे।

एक दिन भगवान से प्रार्थना करते हुए रामू ने कहा, परवरदिगार ! इस काना का गधा आप उठा लेवे तो मेरा मन प्रसन्न हो जाय। दूसरे दिन क्या हो गया कि गधे के बजाय उनका बैल मर गया।

रामू ने अपनी पत्नी से कहा, मै इतने सालों से भगवान की प्रार्थना करता हूं। फिर भी भगवान ने ज्ञानी होकर गधे की जगह पर मेरा बैल उठा लिया। गधा और बैल को भी पहचान न सका।

पत्नी ने कहा—अपन दूसरों के प्रति जैसा भाव रखते है, वैसा अपन को प्राप्त होता है। दूसरे के लिये खड्डा खोदते है, तो अपन को खड्डो मे गिरना पड़ता है। दूसरे की ओर ईर्ष्या न करना मगर मैत्री भाव की मधुर बन्सी बजाना चाहिये। प्रेम भाव का संगीत गुञ्जित करना चाहिये जिससे उनका और अपन का कल्याण हो जाय। रामू समझ गया।

इस वार्ता का सार यह है कि अपने जीवन में भी ईर्ष्या-लोभ-वासना आदि दुर्गुण घर कर गए हो, तो शीघ्र निकाल कर सद्गुणो की सुवास से जीवन सुरभित बनाइये......जिससे सुख की परपरा प्राप्त करते-करते एक दिन सिद्धि सुन्दरी वरमाला डाल देवे.. .जिसमे शाश्वत मुक्त जीव बन जावे......

जिस प्रकार घिसने, काटने, तपाने, और पीटने से स्वर्ण की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार त्याग, शील, गुण और कर्म इन चारों से मनुष्य की परीक्षा होती है।

★ चाणक्य

कथा श्री मणिभद्रवीर की

□ --आचार्य श्री विजयेन्द्र दिन्नसूरिजी महाराज

मालवा प्रदेश की राजधानी उज्जयिनी मे श्रेष्ठि माणेकचन्दजी बहुत बड़े व्यापारी थे। उस जमाने मे बस, ट्रक, मोटर गाड़ियाँ आदि नही थी। सेठ माणेकचन्द पोठिये भर कर (बैलो पर सामान लादकर) अन्य व्यापारियो के साथ व्यापारार्थ अजमेर पहुचे। उस समय अजमेर अच्छा व्यापारिक केन्द्र था, अतः नगर का ठाट-बाट निराला था। कार्तिक पूर्णिमा का दिन था। महान् विद्वान एव चरित्र चूड़ामणि आचार्य श्रीमद् हेम विमल सूरिजी महाराज का ५०० शिष्यो के साथ अजमेर मे चातुर्मास था। उस समय अजमेर मे २५०० जैनो के घर थे। वह युग मुगलो के शासन का था।

ऐसे महान् आचार्य श्री के दर्शन-वन्दन हेतु सेठ माणेकचन्द बाजार से उपाश्रय मे आये और आचार्य श्री की पीयूषवाणी श्रवण कर आनन्द-विभोर हो गये। पूज्य गुरुदेव के शब्दामृत उनके श्रवणपुटो मे आनन्द घोलने लगे। गुरुदेव ने कहा जिस मनुष्य ने जन्म लेकर श्री सिद्धाचलजी महातीर्थ की यात्रा नही की, वह अभी तक माता के पेट मे ही है – उसका जन्म हुआ ही नही। यह समझना चाहिये। उसका मानव जन्म निष्फल गया।"

सेठ माणेकचन्द के हृदय में ये वचन रम गये। वह सोचने लगा मेरे पास विपुल सम्पत्ति है। करोड़ो का मान है, परन्तु किस काम का ? मैं अवश्य श्री सिद्धाचलजी की यात्रा तत्काल करूगा। उसने मन मे सकल्प किया कि जब तक मैं श्री सिद्धाचल गिरिवर की यात्रा नही करूगा तब तक अन्न-जल ग्रहण नही करूगा। व्याख्यान समाप्त हुआ। उसने खड़े होकर श्री गुरुदेव से विनती की कि मुझे प्रतिज्ञा कराओ' 'मैं जब तक श्री सिद्धाचलजी की यात्रा नहीं करूगा, तब तक भोजन और पानी ग्रहण नही करूगा।" इस विनती को सुनकर समस्त सभासद् आश्चर्य विभूत होगये। पूज्य गुरुदेव ने इस कठोर पच्चक्खाण को न लेने के लिये सेठ माणेकचन्द को समझाते हुए कहा — "श्री सिद्धाचलजी अजमेर से बहुत दूर है। वहाँ पहुचने मे कम से कम एक महीना लगेगा।"

परन्तु सेठ माणेकचन्द के हृदय में श्री सिद्धाचलजी की यात्रा की ऐसी लगन लग गई थी कि जो छोड़ी नही जा सकती थी। वह लगन थी प्राणों से भी प्यारी " लागी लगनवा, छोड़ी न छूटे, जब लग घट मे प्राण रे, मोरी लागी लगनवा" सेठ ने पूज्य गुरुदेव को कहा "चाहे शरीर गिर जाय पर श्री दादा के दर्शन सिद्धगिरि की यात्रा करूगा और फिर अन्न जल लूगा, पहिले नही।"

पूज्य गुरुदेव ने श्रेष्ठि के दृढ निश्चय को देख कर प्रतिज्ञा दे दी। अजमेर से चला हुआ सेठ माणेकचन्द भूखा प्यासा दादा के दर्शन का प्यासा पालनपुर के निकट मगरवाडा पहुँचा। यह रास्ता सघन जगल का था। हिंसक जानवरो का भय तो था ही, साथ-साथ डाकुओ के आतक का भी भय था। रास्ते

में हाथ मे तलवार लिये (चार) डाकू मिलें। डाकुओं ने सेठ को ललकारते हुए कहा —अरे वनिये खड़े रहो , परन्तु सेठ तो दादा के दर्शन की धुन में चला जा रहा था, उसने डाकुओं के शब्द नही सुने । सेठ के कंधे पर छोटी सी सामान की गठरी थी । डाकुओं को शंका हुई कि सेठ के कंधे पर जो गठरी है, उसमें धन माल है, इसलिये वह अनसुना चला जा रहा है और हमको चकमा दे रहा है । एक डाकू ने पीछे से गर्दन पर वार किया और गर्दन टूटकर गिर गई। दूसरे ने धड़ पर वार किया, धड़ अलग हो गया। श्री सिद्धाचलजी की यात्रा की शुभ भावना में रंगा हुआ सेठ दादा का नाम लेते-लेते स्वर्गलोक सिधारा। प्रभु का स्मरण करते हुए मृत्यु को प्राप्त सेठ माणेकचन्द श्री जिन शासन अधिष्ठायक देव मणिभद्र वीर वने ।

इस बीच पूज्य आचार्य श्री हेम विमलसूरिजी के ५०० शिष्यों में प्रतिदिन एक शिष्य को खून की उल्टी होने लगी और चक्कर आने लगे । तत्काल वह मृत्यु की गोद में सोने लगा । इस प्रकार प्रतिदिन खून-की उल्टी और चक्कर आने से एक-एक शिष्य की जव मृत्यु होने लगी तव पूज्य आचार्य श्री ने अष्टम तप की आराधना की । अष्टम तप के प्रभाव से शासन देव उपस्थित हुए और गुरुदेव को कहने लगे : आज्ञा दीजिये मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ।

आचार्यश्री ने अपने शिष्यों के मरने का वृत्तान्त सुनाया तव श्री अधिष्ठायक देव ने उनको कहा 'क्या आपने मुझे पहचाना ? मैं वही आपका शिष्य श्रावक माणेकचन्द सेठ हूं जिसने आपसे सिद्धाचलजी की यात्रा की कठोर प्रतिज्ञा ली थी ।"फिर अधिष्ठायक देव ने डाकुओ द्वारा मगरवाड़ा मे तलवार को वार से मरने का सारा वर्णन किया और कहा कि मैं दादा का नाम लेते-लेते शुभ भाव में रमण करता हुआ मरा अतः अधिष्ठायक देव मणिभद्र वीर हुआ हूं। आपके शिष्यों पर जो विपत्ति आई है इसका कारण है कि एक ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्य ने भैरव देव की साधना की है और भैरवदेव आपके शिष्यों को मार रहा है ।

पूज्य आचार्य श्री ने श्री अधिष्ठायक देव को कहा :....इस विघ्न को समाप्त करो । श्री मणिभद्र वीर ने कहा "तथास्तु" उसने अपने ५६ वीरों को बुलाया । भैरव देव भी उपस्थित हुए । श्री मणिभद्र वीर ने भैरव देव को कहा —आचार्य श्री के शिष्यों को क्यों मारते हो ? भैरवदेव बोले :— मन्त्राधीन देवता: । इस पर अधिष्टायक देव श्री मणिभद्र ने भैरवदेव को कहा 'अब यह उपद्रव बन्द करो ।" भैरव देव के आनाकानी करने पर दोनों में मल्लयुद्ध हुआ । श्री मणिभद्र की विजय हुई । भैरवदेव ने कहा : अधिष्ठायक देवजी आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ।" अब मैं आचार्य श्री के शिष्यों को कभी नही मारूंगा ।

इस प्रकार श्री मणिभद्र वीर ने कहा : भविष्य में किसी पच महाव्रतधारी साधु को मत मारना न सताना । ऐसा करने से भयंकर नरक में जाने का कर्मवंध होता है । आपका कर्त्तव्य है कि अपनी शक्ति का सदुपयोग करो, देवों की शक्ति रक्षा करने में लगनी चाहिये, न कि किसी को मारने में ।

भैरव देव अदृश्य हों गये । अधिष्ठायक देव भी अन्तर्धान हो गये और पूज्य आचार्य श्री हेम विमलसूरि के शिष्यों में शाति की स्थापना हुई । ऐसे विलक्षण अधिष्ठायक देव श्री मणिभद्र हैं ।

धर्म मात्र वंदना का नहीं, व्यवहार की आचार संहिता है

विद्यावारिधि डा० महेन्द्र सागर प्रचडिया, डी लिट्
सचालक जैन शोध अकादमी, अलीगढ

भारत विशाल किन्तु धार्मिक देश है। यहा समय-समय पर अनेक धार्मिक मान्यताए स्थिर होती रही हैं। जो सनातनी धर्म है उनमें भी समय-समय पर यत्किचित परिवर्तन हुए हैं। सिद्धान्त शाश्वत होत हैं, उनकी व्यवहार-पद्धतिया प्राय बदलती रहती हैं।

वैदिक, बौद्ध और जैन धर्म भारत के प्रमुख प्राचीन धम हैं। यह धार्मिक त्रिवेणी बनकर भारतीय धम के रूप को स्वरूप प्रदान करती है। प्रथम दो धर्म व्यक्ति एव विष्णु प्रधान हैं अर्थात् परमात्मा धर्म-कर्म के कर्ता हैं, सृष्टा हैं और फल-प्रदाता हैं। उनकी महिमा महान है। जिनके अधीन पूरा ब्रह्माण्ड है। जैन मान्यता इससे बिल्कुल भिन्न किन्तु अनन्य है।

जैन धर्म अनादि-अनन्त है। उसका कोई स्रष्टा नहीं। वह सर्वथा प्रकृतिजन्य है। गुणों के समूह का नाम द्रव्य है और द्रव्य के समूह का नाम ससार है। ससार मे जितने भी द्रव्य हैं उन्हे षट् भागो मे विभाजित किया जा सकता है। यथा—

1 जीव
2 अजीव
3 धम
4 अधर्म
5 आकाश
6 काल

द्रव्य के गुण सदा अविनाशी तथा सदा-सर्वदा रहने वाले होते हैं। उनकी पर्याय नित्य परिवर्तित होती रहती है। इसी परिवतन मे नाना प्रकार के आकर्षण-विकर्षण उत्पन्न हुआ करते हैं। उन्हीं मे रमकर प्राणी जन्म-मरण के चक्रमण मे फंसा रहता है।

यहा प्रत्येक प्राणी अपने कम का स्वय कर्ता है और अपने कम-फल का स्वय ही भोक्ता है। कर्म-विपाक प्राणी को नाना गतियो मे चक्कर लगवाते रहते हैं। कम-क्षय कर व्यक्ति बधन मुक्त होता है। बन्धन मुक्त वस्तुत निर्बन्ध अवस्था होती है और यही अवस्था श्रेष्ठ मानी गई है। इस अवस्था के प्राप्त्यर्थ व्यक्ति को स्व-साधना के बलबूते पर अपने को रिक्त-परिष्कृत करना होता है। उत्तरोत्तर विकास के लिए यहा पर प्राणी के लिए पूर्ण अवकाश है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का विकास उसकी स्वय की साधना पर आश्रित है किसी व्यक्ति-सत्ता द्वारा वह आनन्द अवस्था प्रदान नहीं हुआ करती। इसलिए जैन धर्म मे प्रत्येक व्यक्ति स्वाधीन है। पराधीन कभी प्रकर्ष को प्राप्त नहीं हो पाता। प्रत्येक प्राणी प्रभु बनने की शक्ति-सामर्थ्य रखता है। इस प्रकार व्यक्ति उदय एव वर्ग उदय की अपेक्षा जैन धर्म वस्तुत सर्वोदय के वातायन खोलता है।

उपदेश देने के नहीं, सजोने के होते है। सदाचरण का हम स्वयं प्रयोग-उपयोग करें, स्वयं जगे और उठे। जाग्रत लोक में जागरण को प्रोत्साहन जुटाता है। मूर्च्छित स्वयं सोता है और सुप्तावस्था को प्रोत्साहन देता है। महावीर जिनेन्द्र परम्परा में चौबीसवें तीर्थंकर माने जाते हैं। उन्होंने साधारण संसारी जीव से विकास करते-करते स्वयं को असाधारण बनाया था। उनकी समता-सभा मे विरोधी पहुंचकर अविरोधी वन जाते थे। गाय और सिंह एक घाट पर पानी पीते थे।

हम सभी संसारी जीव हैं। यही क्या कम है कि हम सव मनुष्य है। मनुष्य गति श्रेष्ठ मानी गई है। यहां विकास के सभी साधन उपलब्ध है मात्र उनके प्रयोग–उपयोग का प्रश्न है।

महावीर ने कहा था कि हमे प्रत्येक कार्य जाग्रत अवस्था मे करना चाहिए। किसी वस्तु को उठाते अथवा रखते समय हमे होश होना चाहिए कि वस्तु को इस प्रकार उठाएं अथवा रखे ताकि किसी जीव को हमारी असावधानी अर्थात् वेहोशी से कष्ट न हो। हम चलें, देखें, वोलें, खाएं इन सभी क्रियाओ मे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे व्यवहार से किसी जीव का हनन अथवा दहन तो नही हो रहा है। इस प्रकार के होश को धार्मिक भाषा मे समिति कहा गया है।

द्वेष-द्वेष को वढ़ाता है। आकुलता-आकुलता को जन्म देती है। महावीर ने कहा कि मोह आकुलता और आक्रोश की जननी है। व्यामोह विसर्जन व्यक्ति को निराकुल वनाता है। व्यक्ति की निराकुल अवस्था उसे सम्यक् दृष्टि वनाती है सम्यक् दृष्टि जीव के दर्शन कर सभी प्रमुदित होते है। वह स्वयं गुणी होता है और गुणी जनों को देखकर उसका मन-मयूर नाच उठता है।

जैन धर्म में इसीलिए गुणों की वन्दना की गई है। पंचपरमेष्ठी गुणो की निधि है। वे व्यक्ति नहीं गुण-पुंज है जिनका स्मरण-चिन्तवन कर हम स्वय अपने मे व्याप्त गुणों को जगा सकते है। आत्म जागरण ही जैन पूजा है, जैन भक्ति है। पूजा की कोई भाषा विशेष नहीं होती। महावीर ने उपासना की भाषा को आचरण की भाषा कहा था। इससे सारे भाषा विवाद समाप्त हो गए थे। धर्म की भाषा आचरण की भाषा होती है।

प्रत्येक पदार्थ में अनन्त गुण होते है। उन गुणों को जानने और मानने के लिए हमें हमारे समझ बूझ के दृष्टिकोण अनन्त वनाने होगे। एकान्त दृष्टि वस्तु को पूर्णतः जान-पहिचान नहीं सकती। एकान्त दृष्टि से आग्रह उपजते है। यही वढकर आक्रोश और क्रोधादि कषायों को जन्म देते है। अनेकान्ती सदा निराग्रही होता है। अपेक्षा से प्रत्येक कथन सच होता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि महावीर और उनकी चर्या मात्र वन्दना की नही, आचरण का आलोक है जिससे प्रकाशित होकर प्रत्येक प्राणी अपने प्रकाश को जगा सकता है और स्वयं प्रकाशित हो सकता है।

"दुःख मे क्यों रुदन मचाया ?"

□ श्रीमती शाती देवी लोढा

सुख दु ख दोनो से मण्डित सम्पूर्ण सृष्टि का आनन,
कांटो से प्लावित होता प्रत्येक हरित वन कानन ।

गम्भीर सिन्धु का जल जो वर्षा का कारण होता,
लवणो के कण के कारण वह निशिदिन मानो रोता ।

उज्ज्वल शशि निज किरणो से जग मे अमृत बरसाता,
लेकिन निज लाछन लखकर वह करुण कथाए गाता ।

स्वर्णिम आभा से दिनकर जग को आलोकित करता,
लेकिन आतप ज्वाला से वह निशिदिन व्याकुल रहता ।

निर्मल निर्झर का जल जो है मन को मुदित बनाता,
सह कर प्रहार खण्डो के निश्वासें भरता जाता ।

नीले नभ का नव आगन उडुगण से शोभा पाता,
होता है व्यथित हृदय जब श्यामल मेघो से छाता ।

धरणी के वक्ष स्थल पर फल फूल सभी फलते हैं,
पशु-पक्षी, मानव के शव इसके उर पर जलते हैं ।

कमनीय कमल निज छवि को लखलख आनन्दित होता,
पर वास पङ्क मे लखकर है मन ही मन वह रोता ।

मानव-जीवन मे सुख दु.ख दोनो ने नीड बनाया,
सुख मे वह रत रहता है दु ख मे क्यो रुदन मचाया ?

● — ●

श्री महावीर जन्मोत्सव, १९८२

(१) मिगसर वदी ५ स. २०३९ को चन्दलाई मन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर ध्वजदण्ड आरोहण हेतु भाग्यशाली कूपन की बिक्री जारी करते हुए श्री फतेहसिंहजी कर्णावट ।

(२) इसी अवसर हेतु द्वारोद्घाटन के भाग्यशाली कूपन का उद्घाटन करते हुए श्री कपिलभाई के शाह ।

(३) मणिभद्र – १९८२ के २४ वें अंक का विमोचन करते हुए श्री सरदारमलजी लूनावत ।

(४) श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल के स्वयं सेवकों को विशेष सेवाओं के लिए सम्मानित करने हेतु संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री कस्तूरमलजी शाह श्री राकेश मोहनोत को भेंट प्रदान करते हुए। मण्डल के अध्यक्ष श्री सुरेश मेहता पास में खड़े हैं ।

श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी मंदिर, जनता कालोनी, जयपुर

का वार्षिकोत्सव दि॰ 14-8-83

श्री सुमतिनाथ जिनालय, जयपुर में सम्पन्न

नवान्हिका महोत्सव दि० 12 से 20 अगस्त, 83 तक
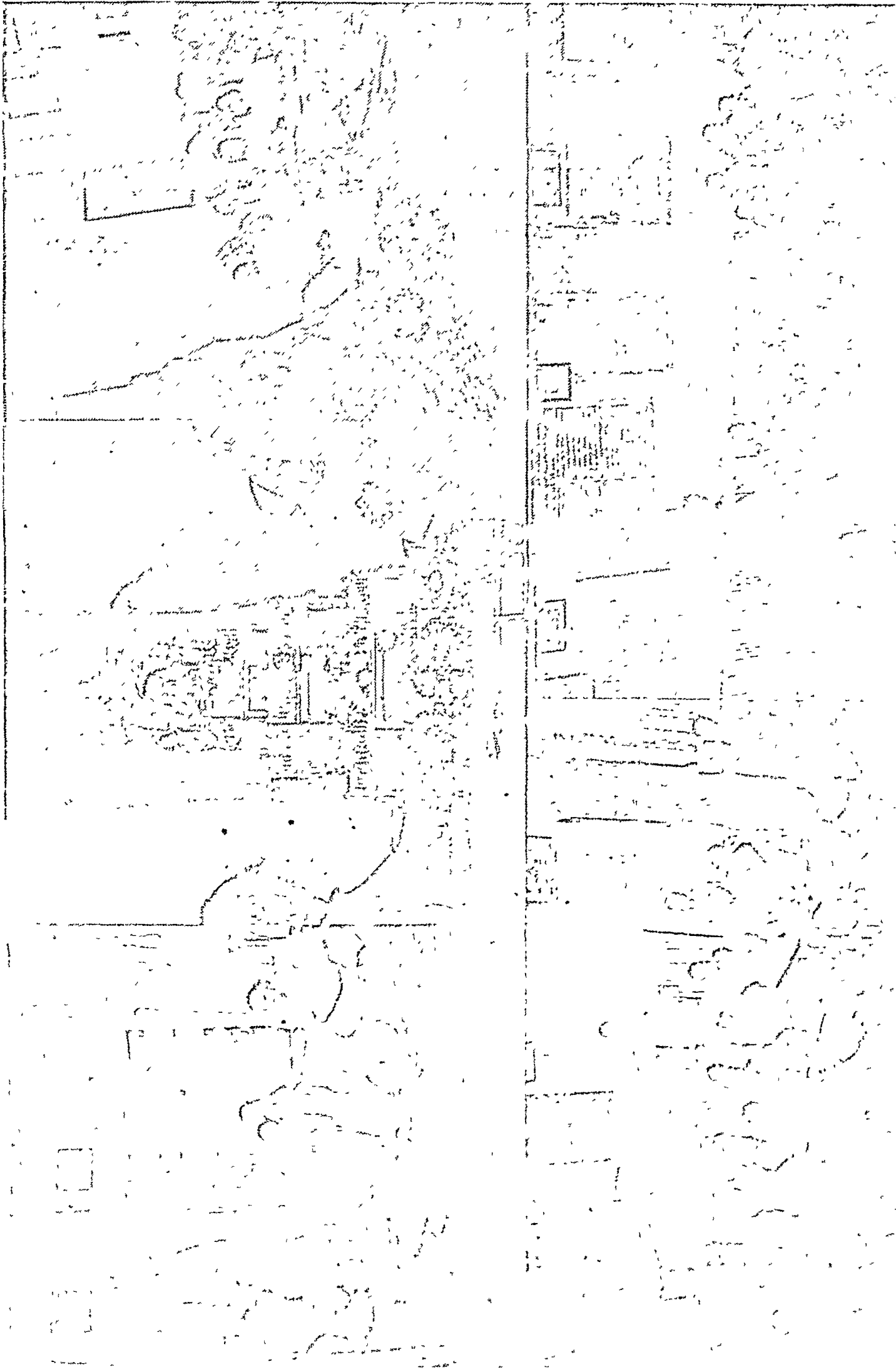
श्री शांतिनाथ स्वामी का जिन मंदिर, चन्दलाई

पुनर्प्रतिष्ठा महोत्सव दि० ५ दिसम्बर, १९८२

(१) आचार्य श्रीमद्विजय मनोहर सूरीश्वर जी म० सा० को संघ की ओर से कामली वोहराते हुए संघ के अध्
श्री हीराचन्दजी चौधरी।

(२) ध्वजदण्ड आरोहण हेतु भाग्यशाली कूपन की लाट्री निकालते हुए संघ मंत्री श्री मोतीलाल जी भडकतिय

(३) मन्दिर व्यवस्था उप समिति के संयोजक श्री बलवन्तसिंहजी छजलानी का मंदिर जीर्णोद्धार हेतु की गई विशि
सेवाओं के लिए संघ की ओर से चूंदडी का साफा पहनाकर बहुमान करते हुए संघ के अध्यक्ष।

(४) संघ के उपाध्यक्ष कपिलभाई के शाह श्री छजलानी का अपनी ओर से गलीचा भेंट कर सम्मान करते ह

जिनविजय रचित नैषधीयचरित टीका की दुर्लभ प्रति

ले० महोपाध्याय विनयसागर

(साहित्य महोपाध्याय, साहित्याचार्य, जैन दर्शन शास्त्री, शास्त्रविशारद)

जैन मुनिपुङ्गव बहुभाषाविद् और निखिल शास्त्रों/आगमो/दर्शनो के प्रौढ़ विद्वान् होते थे। ये मुनि श्रमण जीवन की साधना में रत रहते हुए श्रमण भगवान् महावीर की अनुपमेय वाणी का प्रचार-प्रसार करने भारत के समस्त प्रदेशो एवं स्थानों पर निरन्तर परिभ्रमण/विचरण करते रहते थे। साधना और वाणी-प्रचार के साथ-साथ ये स्वयं समग्र विषयो के शास्त्रो का अध्ययन भी किया करते थे तथा श्रमण वर्ग को अध्ययन भी करवाते रहते थे। स्वान्त:-सुखाय अथवा अध्ययन हेतु मुनिगणों की अभ्यर्थना से परहिताय नूतन साहित्य का सर्जन या व्याख्या साहित्य का निर्माण भी करते रहते थे। साहित्य का कोई भी अंग इन जैन विद्वानो से अछूता नही रहा कि जिस पर इन्होने स्वतन्त्र रचना या व्याख्या का निर्माण न किया हो ! जैन साहित्य को पृथक् रखकर देखें तो व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, लक्षणशास्त्र, न्यायदर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तु, रत्न, कामशास्त्र आदि विषयों पर इनके द्वारा गुफित विपुल साहित्य आज भी प्राप्त है।

संस्कृत साहित्य मे अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त पाच महाकाव्यों के अनुकरण पर उसी कोटि के अनेक महाकाव्य भी जैन मनीषियो द्वारा निर्मित प्राप्त होते है और इन पाच महाकाव्यों के पादपूर्ति रूप काव्य भी अनेको प्राप्त है। साथ ही इन पाच महाकाव्यो पर जैन विद्वानो द्वारा रचित 40 से अधिक टीकाये भी प्राप्त होती है।

इन्ही पांच महाकाव्यो में विश्रुत अप्रतिम-प्रतिभा-सम्पन्न महाकवि श्री हर्ष प्रणीत नैषधीयचरित नामक महाकाव्य संस्कृत साहित्य में अपना एक विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान रखता है। "नैषधे पदलालित्यम्" कहकर परवर्ती सस्कृत जगत् के समस्त लेखकों ने इसको शीर्षस्थान प्रदान किया है और इस पर लगभग 25 से भी अधिक व्याख्याकारो ने व्याख्याओं का निर्माण कर स्वयं की लेखिनी को कृतार्थ किया है। इन व्याख्याओं में 4 व्याख्यायें तो जैन मनीषियों के द्वारा रचित है:—

1. मुनिचन्द्रसूरि स० 1170
2. चारित्रवर्धनोपाध्याय स० 1368
3. रत्नचन्द्र गणि स० 1668
4 जिनराजसूरि 17 वी शती का अन्तिम चरण।

इसी शृखला मे जिनविजय रचित नई व्याख्या भी प्राप्त होती है जो अद्यावधि अज्ञात रही है और जिसकी अभी तक एक मात्र प्रति ही प्राप्त हुई हैं। यह प्रति वतमान मे "महाराजा सवाई मानसिंह II सग्रहालय सीटी पैलेस (पोथी खाना) जयपुर मे ग्रन्थाक ३६७ पर उपलब्ध है। साइज २८६×११२ सेन्टीमीटर है। त्रिपाठ है और ग्रन्थाग्रन्थ (श्लोक परिमाण) २४ हजार है। लेखन शुद्ध, अक्षर स्फीत और सुवाच्य हैं। दशा अच्छी है। लेखन काल अनुमानत १८ वी शती का अन्तिम चरण अथवा १६ वी का प्रथम चरण प्रतीत होता है। किन्तु दुर्भाग्य से यह प्रति किंचित् अपूर्ण है। पत्राक ५८३ A पर नैषध के २२ वें सर्ग के १५० वें पद्य की व्याख्या चल रही है –

"स्वर्भानु०। स्वर्भानु प्रतीति तुषारद्युति देवश्चन्द्र नोऽस्माक तुष्टये म तु भवतु इत्यन्वय। कथभू० तुषारद्युति ? प्राप्त सहस्रधारकलशश्री' प्राप्ता सहस्रधारश्चासौ कलशश्च सहस्रधारकलश, सहस्रधारकलशस्य श्री सहस्रधारकलशश्री, प्राप्ता सहस्रधारकलशश्रीर्येन स तथा। कस्मिन् ? 'पुष्पेष्वासनतत्प्रिया०' पुष्पे परिणयानन्दाभिषेकोत्सवे तस्य कामस्य प्रिया तत्प्रिया, पुष्पेष्वासनकामश्च तत्प्रिया च पुष्पेष्वासनतत्प्रिये, पुष्पेष्वासनतत्प्रिययो परिणय विवाह पुष्पेष्वासनतत्प्रियापरिणय, पुष्पेष्वासनतत्प्रियापरिण" " ।"

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि २२वें सर्ग के १५० वें श्लोक की आधी टीका, सर्गान्त का १५१ वा पद्य "श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालकारहीर सुत' की व्याख्या और अन्तिम प्रशस्ति स्वरूप शेष ४ पद्यो की व्याख्या तथा टीका रचना प्रशस्ति मात्र अश ही इस प्रति मे अप्राप्त है। अर्थात् ३-४ पत्र ही अप्राप्य हैं।

उक्त प्रति के पत्राक ५८३ B का हिस्सा रिक्त है जिस पर लिखा है –"॥ श्रीराम ॥ काव्य नैषधटीका पुस्तक किञ्चित् खण्डितम् पत्र ५८३ ग्रन्थ २४०००" इससे स्पष्ट है कि इस प्रति के प्रतिलिपिकार को प्रतिलिपि करते समय पूर्व प्रति के अन्तिम तीन-चार पत्र प्राप्त नही हुए थे।

टीका का अन्तिमाश प्राप्त न होने से इस टीका की रचना किस सवत् मे, किस स्थान पर और किसके आग्रह पर हुई एव इसका सशोधन किसने किया ? आदि की जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती। फिर भी टीकाकार जिनविजय ने मगलाचरण पद्यो और सर्गान्त पुष्पिकाओ मे जो अपना परिचय दिया है वह इस प्रकार है –

मङ्गलाचरण

"स्वस्तिश्रिय वितनुतात् श्रीनाभेयजिनाधिप।
विघ्नान्धकारमातण्ड श्रेयस्तरुवलाहक ॥१॥

शिवतातिर्जिन शान्तिर्वञ्चिणा विधिना दिवि।
यो मुहु सस्नुत सोऽस्तु सर्वारिष्टक्षयाय व ॥२॥

श्रीमन्नेमिर्जिनाधीश स्मराम्भोधिघटोद्भव।
विद्वज्जनमनोमोदप्रदो भूयात् सता मुदे ॥३॥

पार्श्व प्रौढयशो नित्य धरणेन्द्राद्युपासित।
जगतीभूषणा नित्य भूयात् सिद्धिप्रद सताम् ॥४॥

सैद्धार्थि श्रीमहावीर कुर्यात्क्षेम क्षमाकर।
कल्पितानल्पसकल्पकल्पवृक्ष इवाङ्गिनाम् ॥५॥

सरस्वती नमस्कृत्य सर्वबुद्धिप्रदायिनीम्।
तरणी पतताघोरे जनाना जाड्यवारिधौ ॥६॥

करोमि स्वगुरो पादप्रसादात् प्रौढता मुदा।
श्रीमन्नैषधकाव्यस्य वृत्ति बालावबोधिनीम् ॥७॥

—प्रथमसर्गान्त पुष्पिका

श्रीवीरस्य यथाक्रमेण गुरवः पट्टे बभूवुर्विभोः,
श्रीसूरीश्वरहीरहीरविजयाः श्रीमत्तपागच्छपाः, ।
तेषां श्रीजयवन्तसंज्ञऋषयः शिष्या मनीष्युत्तमा—
स्तेषामन्तिषदश्च देवविजयाः संविज्ञविज्ञोत्तमाः ॥ १ ॥
तत्पादाम्बुजचञ्चरीकसदृशश्चारित्रचूडामणेः,
प्राप्यार्थं विनयादिसद्विजयतः श्रीवाचकाधीश्वरात् ।
सर्गेऽत्र प्रथमेऽतनिष्ट विबुधः श्रीनैषधस्यादरा—
दर्थात्कल्पलतां जिनादिविजयष्टीकामिति श्रेयसे ॥ २ ॥

ग्रन्थाग्र. वृत्ति १४७२

—द्वितीय सर्गान्त पुष्पिका

तत्पादपद्मभ्रमरायमाणः, शिष्यो जिनादिर्विजयोऽतनिष्ट ।
द्वितीयसर्गस्य हि नैषधाख्ये, काव्येऽर्थतः कल्पलतां सुटीकाम् ॥ २ ॥
इति श्री तपागच्छीय पण्डितश्रीदेवविजयशिष्य पं. जिनविजयगणि–
विचितायामर्थकल्पलतायां नैषधवृत्तौ द्वितीयः सर्गः । ग्रन्थाग्र वृत्ति ६२८

—एकविंशाति सर्गान्त पुष्पिका

विश्वार्यहीरविजयाह्वयसूरिशिष्याः,
मेधाविनोऽत्र ऋषयो जयवन्तसंज्ञाः ।
तेषां च देवविजया विबुधास्तदीयः,
शिष्यो जिनादिविजयो विबुधो विशिष्य. ॥ १ ॥
श्रीवाचकाद् विनयसद्विजयादधीत्य,
श्रीनैषधीयमथ तस्य चकार टीकाम् ।
तस्यां समर्थसुगमार्थसमर्थितायां,
सर्गः समाप्तिमभजत्स्वयमेकविंशः ॥ २ ॥

अंकित पुष्पिकाओं के अनुसार नैषधीयचरित की अर्थकल्पलता टीका के प्रणेता जिनविजय तपागच्छीय जगद्गुरु आचार्यप्रवर श्री हीरविजयसूरिजी के शिष्य मनीषिपुंगव जयवन्त ऋषि के पौत्र शिष्य थे और संविज्ञोत्तम देवविजय के शिष्य थे ।

जयवन्त ऋषि और देवविजय की कोई रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है । जैन रामायण और दानादिकुलक के टीकाकार देवविजय श्री राजविजय के शिष्य होने से इनसे भिन्न हैं । जिनविजय

की भी इस टीका के अतिरिक्त एक अन्य कृति और प्राप्त है, वह है स १७१० में रचित कल्याण मंदिर स्तोत्र टीका।

टीकाकार जिनविजय ने सर्गान्त पुष्पिकाओं मे विनयविजयोपाध्याय का विशिष्ट श्रद्धा-भक्ति पूर्वक स्मरण करते हुए लिखा है —"चारित्रचूडामणे प्राप्याथ विनयादिसद्विजयत श्रीवाचकाधीश्वरात्" "श्रीवाचकाद् विनयसद्विजयादधीत्य श्रीनैषधीयम्।" इस अवतरण से स्पष्ट है कि तत्कालीन ख्यातिप्राप्त प्रौढ विद्वान्, लोकप्रकाश, कल्पसूत्र सुबोधिका टीका, हैमलघुप्रक्रिया, शान्तसुधारस, श्रीपालरास आदि अनेकों ग्रन्थों के प्रणेता श्री विनयविजयोपाध्याय के नैकट्य मे रहकर जिनविजय ने शिक्षण प्राप्त किया था। नैषध काव्य का अध्ययन भी किया था।

वि स १७०८ मे विनयविजय रचित लोकप्रकाश की प्रशस्ति के अनुसार लोकप्रकाश का प्रथमादर्श जिनविजय ने ही लिखा था। अतएव सभावना यही है कि यही जिनविजय हों। इस आधार से जिनविजय का सत्ताकाल १६८० से १७३० तक का अनुमानित किया जा सकता है।

प्रस्तुत नैषधीय चरित की अर्थकल्पलता टीका जिनराजसूरि रचित जैनराजी टीका के समान विस्तृत, गम्भीरार्थ और आदर्श टीका नहीं होते हुए भी खण्डान्वय शैली मे वर्ण्यविषय, अर्थ और समास को विशदता के साथ स्पष्ट करती है। भाषा परिमार्जित है। छात्रों के लिए तो कल्पलता के समान अतीवोपयोगी है। टीका मे व्याकरण, काव्य, कोष अनेकार्थी कोष, लक्षणशास्त्र आदि के उद्धरण भी यत्र-तत्र प्रचुरता से प्राप्त हैं। टीका का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि टीकाकार जिनविजय मजे हुए प्रौढ विद्वान् थे।

टीकाकार की शैली का रसास्वादन करने के लिये सर्ग २ के श्लोक ३२ की टीका का अवलोकन कीजिये —

कलशे निजहेतुदण्डज किमु चक्रभ्रमकारितागुण
स तदुच्चकुचौ भवन्प्रभा-झरचक्रभ्रममातनोति यत् ॥३२॥

कलश इति। कलशे-कुम्भे चक्रभ्रमकारितागुण निजहेतुदण्डज।
किमु ? विद्यते चक्रस्य भ्रम चक्रभ्रम, चक्रभ्रम करोतीति चक्रभ्रमकारी,
चक्रभ्रमकारिणो भाव चक्रभ्रमकारिता, चक्रभ्रमकारिता एव गुण।
कथभू० चक्रभ्रमकारितागुण ? निजहेतुदण्डज निजस्य हेतुर्निजहेतुश्चासौ
दण्डश्च निजहेतुदण्ड, निजहेतुदण्डाज्जायते स्मेति निजहेतुदण्डज।
कस्मिन् ? कलशे-कुम्भे निजस्य घटस्य हेतु-निमित्तकारण दण्ड
तस्माज्जात इत्यर्थ। यद्यस्मात्कारणात् स कलश प्रभाझरचक्रभ्रम
आतनोति। प्रभाया झर प्रभाझर चक्रस्य भ्रम चक्रभ्रम प्रभाझरे
चक्रभ्रम प्रभाझरचक्रभ्रमस्त चक्रवाकभ्रममित्यर्थ। किं कुर्वन् कलश ?
तदुच्चकौ भवन्, उच्चौ च तौ कुचौ उच्चकुचौ, तस्या उच्चकुचौ तदुच्चकुचौ दमयन्तीस्तनावित्यर्थ। अयमर्थ —कार्यं यदुत्पद्यते तत्र कारणत्रय
भवति, एक समवायिकारण मृत्तिका, द्वितीय असमवायिकारण कपाल-
द्वयसयोगादि, तृतीय निमित्तकारण कुलालादि अदृष्टादिकञ्च। तत्र

उपादानकारणस्य मृत्तिकादेर्गुणः श्यामत्वादिको घटे समवैति, ततो घटोऽपि श्यामो भवति। असमवायिनः कपालद्वयसंयोगादेरपि गुणो घटे न समवैति, तस्य स्वय गुणरूपत्वात्। गुणे गुणानंगीकारात् निमित्तकारणस्य कुलालादेरपि गुणो न कार्ये समवैति। गौरेण कुम्भकारेण कृतो घटो गौरो न भवति। पीतेन् दण्डेन पीतो न भवति। श्वेतदोरकेण श्वेतो न भवति। अत्र घटे चक्रभ्रमकारितालक्षणो दृश्यते। स च निमित्तकारणाद् दण्डाज्जातः न दिदृष्टेऽनुपपन्नं नामतः। कविरुत्प्रेक्षां कुरुते—कलशे योऽयं चक्रभ्रमकारितागुणः स स्वहेतुदण्डजः। किमु यदयं कलश एव दमयन्ती कुचौ भूत्वा प्रभाप्रवाहे चक्रभ्रमं करोति। अयम्भावः—कुचयोर्यच्चक्रभ्रमकारित्वं तत्तु कलशनिष्ठत्वमेव कलशपरिणतिरूपत्वात् कुचयोरिदानी कलशे सा चक्रभ्रमकारिता। कुतस्त्येति विचारे कारणान्तरेष्वभावाद् दण्डनिष्ठैव इत्युत्प्रेक्ष्यते। दण्डे च चक्रभ्रमकारितास्त्येव। घटकारणीभूतं चक्र स एव भ्रमयतीति शब्दच्छलेन व्याख्यानम्॥ ३२॥

प्रस्तुत अर्थकल्पलता टीका एक दुर्लभ जैन टीका है। इसकी एक मात्र किंचित् अपूर्ण प्रति ही उपलब्ध है। अतः जैन संस्थाओं को चाहिए कि इसका सुयोग्य विद्वानों से सम्पादन करवा कर प्रकाशन करें और इसकी फोटो स्टेट कॉपियाँ करवाकर बड़े-बड़े संस्थानों में रक्खे।

वास्तव मे यह जैन समाज और जैन संस्थाओं के लिये खेद का विषय है कि नैषध पर प्राप्त पाचों जैन टीकायें अद्यावधि अप्रकाशित है। इन पांचों टीकाओं की प्रतियां भी विरल/गिनी-चुनी ही प्राप्त है। जैन संस्थाओं ने समय रहते ध्यान नही दिया तो जैन विद्वानों द्वारा भारती-साहित्य की समृद्धि में किया गया योगदान आज की पीढी द्वारा निरर्थक/निष्फल हो जायेगा।

卐卐卐

"दहेज का तांडव नृत्य"

सा श्री प्रियामित्रा श्रीजी म. सा
(सा श्री मनोहर श्री जी श्री सुशिष्या)

वतमान वैज्ञानिक युग में निरतर विकास के बावजूद मानव समाज सामाजिक रूढियो एव वधनो में जकडा हुआ ह । एक ओर तो सुदूर अतरिक्ष में ग्रहो उपग्रहो की खोज हो रही है तो दूसरी ओर सामाजिक कुरीतिया व अन्ध विश्वास मानव का शोपण कर रहे हैं ।

विवाह जो अपने कर्त्तव्यो का भली भाति निर्वाह करने के लिये एक पवित्र बधन माना जाता है आज दहेज प्रथा के कारण पूणरूपेण अपवित्र एव कुत्सित वधन वन गया है । जिसमें अनेक भोली भाली मासूम लडकिया अपने अमूल्य जीवन की वलि चढा चुकी हैं । आज विवाह का धार्मिक व सामाजिक पहलू पूणरूपेण गौण हो गया है । मात्र आर्थिक पहलू-ही प्रमुख वन गया ह । इस ताडव नृत्य से न केवल आर्थिक सतुलन विगडा है वरन् रोगटे खडे कर देने वाले परिणाम भी सामने आये हैं । लडकी की पसदगी के वक्त यह नही पूछा जाता कि लडकी की शिक्षा कितनी है, आचार विचार कैसे है प्रत्युत सवप्रथम कहा जाता है टीके मे कितने हजार देंगे ? सोना, स्कूटर, वीडियो आदि आदि का क्या इतजाम वैठेगा ? वारात की खातिरदारी कैसी रहेगी ?

इस प्रकार लेन देन की शर्तों मे सम्पन्न विवाह से क्या दोनो परिवार में पारस्परिक सद्भावनाएं एव सहानुभूति रह सकती है ? क्या उस कन्या के मन मे अपने माता पिता का शोपण करने वाले सास श्वसुर के प्रति आदर सम्मान शुद्ध सात्विक प्रेम भाव बना रह सकता है ? उसका मानस तीव्र आक्रोश एव प्रतिशोध से आदोलित नही होगा ? होगा, अवश्य होगा । वह भी हाड मास का पुतला है, सुख दुख को महसूस करने की उसमें क्षमता ह । ज्ञान विज्ञान एव शास्त्र स्वाध्याय ने उसे इस लायक वना दिया ह कि वह अपना भला बुरा समझ सके । वर पक्ष दहेज की माग करना है । यहा तक कि वर के जन्म से लेकर अव तक के पालन पोषण शिक्षण का चुकता हिसाब मागकर अपनी इज्जत बढाना चाहता है । यह अजीवोगरीव नाटक कटु सत्य के रूप म नग्न नृत्य कर रहा है । इस स्वार्थी दुनिया मे गुणो की या व्यक्ति की कद्र नही चादी सोने के टुकडो का महत्व है । सारे समाज मे इस दानवी प्रथा का व्यापक विस्तार है विवाह तक ही इसका विभत्स रूप दृष्टिगत नही होता वरन् वर्षों वाद तक वधू के कोमल मानस को अनेक तीक्ष्णतम वाणो से छेदा जाता है । महज दहेज के खातिर ऐसी दर्दनाक घटनाएं हो यह कहा तक उचित है ? क्या यही हमारी उन्नत सस्कृति और सभ्यता का तकाजा है ? हमारी प्रगति या उत्कृष्टता का द्योतक है ? कदापि नही ! यह सारा आडम्बर हमारी सस्कृति की निकृष्टता एव कुत्सित सास्कृतिक

परिवेश का संकेत है। इसकी परि-समाप्ति के लिये वैचारिक व सामाजिक क्रांति के लिये कदम बढ़ाना होगा।

यह एक सर्वमान्य सत्य है, औसत माता पिता अपनी सुशिक्षित पुत्री की शिक्षा दीक्षा के साथ ही वैवाहिक प्रसंग पर शक्त्योचित खर्च वहन करना चाहते है। जो स्वेच्छया देना होता है देते हैं पर वर की समुचित व्यवस्था का रत्ती-रत्ती हिसाब उनके बूते से बाहर होता है। इसके लिये उन्हें कैसे झंझा-वातों से जूझना पड़ता है सुनकर पढ़कर या सत्या-नुभूति कर दिल दहल उठता है।

भगवान महावीर की अहिंसा और अपरिग्रह का सम्मान करने वाले वीर सपूत का कदम कभी नही थिरक सकता इस तांडव नृत्य में। वह भली-भांति समझता है कि भगवान महावीर के शब्दों मे दूसरों का दिल दुखाना भी हिंसा है। और अपरिग्रह सिद्धान्त यह सिखाता है कि अपनी इच्छायें सीमित करे। अत्यावश्यक है कि आज प्रत्येक नव-युवक दहेज का डटकर विरोध करने के साथ अपने संरक्षको को सही कार्य अपनाने में मजबूर करें। आचरण और विचारों मे समता संतोष और सहि-ष्णुता को प्रश्रय देकर ही कल्याणमय जीवन जी सकेंगे ? नवयुवा सक्रिय बनें यही शुभेच्छा।

卐 卐
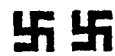
अनेकांत

★ श्रीमती अलका प्रचण्डिया 'दीप्ति' ★

अन्त
अनादि-अनंत है
एकांत है
अवश्य अंत है
अर्थ-अनर्थ से
पडित परेशान है
साध्य साधना मे
साधक महान् है
शमित शांत है
क्यूंकि
'ही' मे परे
'भी' में खरे
मुखर अनेकांत है।

अनमोल वचन

□ सकलक– शान्ति देवी लोढा

१ उस जीवन को नष्ट करने का हमे कोई अधिकार नही, जिसके बनाने की शक्ति हम मे न हो। —गांधी

२ सुबह से शाम तक काम करके आदमी उतना नही थकता जितना क्रोध या चिन्ता से एक घण्टे म थक जाता है। —जेम्स एलन

3 खून का दाग तो धोया-पोछा जा सकता है लेकिन आसू के दाग कहाँ मिटाये जा सकते हैं।

४ मन के खेत मे जैसे बीज बोओगे भविष्य मे वही पाओगे।

५ साधारण लोग अपनी हर बुराई का दोषी दूसरे को ठहराते हैं, अल्पज्ञानी स्वय को, विशेष ज्ञानी किसी को नहीं। —इपिक्टेटस

६ गरीबी लज्जा नही है लेकिन गरीबी से लज्जित होना लज्जा की बात है।

७ यदि तुम प्राप्त करना चाहते हो तो अर्जित करना सीखो। —सुभाषचन्द्र बोस

८ भय और क्रोध दो ऐसे मनोवेग हैं जो हमारे मानसिक स्वास्थ्य को आघात पहुचाते हैं।

९ कर्ज वह कोढ है जो जिन्दगी को गन्दा बना देता है।

१० सज्जन का क्रोध क्षण भर रहता है, साधारण आदमी का दो घण्टे, नीच आदमी का एक दिन रात और पापी का मरते दम तक।

११ घमण्ड से आदमी फूल सकता है, फल नही सकता।

१२ जीवन रोने के लिए नही, खोने के लिए नही अपितु जीवन बोने के लिए है।

१३ ठोकर खाकर गिरे हुए व्यक्ति को ऊपर से और धक्का मारना उचित नही।

१४ परिश्रम वह चाबी है जो किस्मत के फाटक खोल देती है। —चाणक्य

१५ बिना अनुभव का शाब्दिक ज्ञान अन्धा है। —विवेकानन्द

१६. जीवन का एक क्षण करोड़ों मुद्रायें देने पर भी नही मिलता। —चाणक्य

१७. प्रेम, समभाव, सन्तोष एवं सहृदयता आत्मा की सम्पत्ति है।

१८. गुरु दीपक और देव के समान हैं। वे सन्मार्ग का प्रकाश कर मानव को यहाँ अनेक संकटों से और भवान्तर में दुर्गति के दारुण दुःखों से बचा लेते हैं।

१९. परिग्रह ही सबसे बड़ा पाप है, इसी में सारे पाप एक साथ समा जाते है।

२०. उदार मानव दे देकर अमीर बनता है, लोभी जोड़-जोड़ कर गरीब बनता है।

२१. कोयल दिव्य आम्ररस पीकर भी गर्व नही करती लेकिन मेढ़क कीचड़ का पानी पीकर भी टर्राने लगता है।

२२. उच्च मनुष्य अपनी आत्मा से प्रेम करता है, नीच आदमी सम्पत्ति से प्रेम करता है।

२३. जिसने खाने, बोलने में अपनी जबान वश में करली उसने मानों सारा संसार वश मे कर लिया।

२४. भोग आपको छोड़ देते है तो दुःख होता है अच्छा है यदि आप ही उसे लात मार कर सुखी हो जांय।

२५. पैसे से आप जगत के भौतिक पदार्थ अपने अधीन कर सकते हैं किन्तु मानसिक शान्ति एवं अद्वितीय आध्यात्मिक आनन्द नहीं पा सकते हैं।

२६. ताजे दूध की भांति किया पाप कर्म तुरन्त विकार नहीं लाता वह भस्म से ढकी आग की भाँति दग्ध करता, अज्ञ जन का पीछा करता है —बुद्ध

२७. बदला साहस नहीं है, उसका सहना साहस है। —शेक्सपियर

२८. जैसे हम द्वेष से जगत को नर्क और स्वर्ग बना देते हैं, ऐसे ही उसे प्रेम से स्वर्ग के समान बना सकते हैं।

२९. बुरी पुस्तकों को पढ़ना जहर के समान है।

३०. कर्मो की ध्वनि शब्दों से ऊँची होती है।

३१ नम्रता और मीठे वचन ही मनुष्य के आभूषण है। —तिरुवल्लुवर

३२. दान का मतलब 'फेंकना' नहीं बोना है। —बिनोबा

३३. जो क्रोध को स्वयं झेल लेता है वह दूसरों के क्रोध से बच जाता है। —सुकरात

३४. पैसा साध्य नही जीवन का एक साधन है।

३५. आनन्द की खोज ही मनुष्य का सौभाग्य है।

●●

धर्म-अधर्म

मनि श्री भुवनहषविजयजी म सा

दुनियाँ

पोताना तोफानी दिकराने कामे नगाडवा पिताए सुदर तरकीब मोधी। तेमने दुनिया नो नक्मो (मेप) फाडी नाख्यो अने टुकडा पुत्र ने आपी कह्यु, "जा आ टुकडा ने योग्य गीते गोठवी लाव।" टुकडा गोठववा महेली वात नथी। आपणने कदाच टुकडा गोठववानु कहेवामा आव्यु होय तो, आपणे तो वधारे टुकडा ज करी नाखीए।

वालके अथाग प्रयत्न कर्या। वेरविखेर अने छिन्नभिन्न थयेला टुकडाओने शी रीते गोठववा ते तेने समजायु ज नही, छनाय प्रयत्नो चालु ज राख्या।

अचानक एक टुकडा ना पाछला भाग तरफ तेनी नजर पडी। वालकने लाग्यु के दुनिया पाछल कांईक छे। आ रीते तेने वधी रीत समजी लीधी।

तरत ज वधा टुकडा ने उधा करी नाख्या अने एक सम्पूर्ण आकृति तैयार करी लीधी। दुनिया ना टुकडा आगीते गोठपी तेनी पाछल कागल लगावी दीधा।

पिताए ज्यारे जोयु त्यारे आश्चर्य चकित थई गया। आखोय नकसो बरावर गोठवाई गयो हतो। वापे दिकरा ने पुछ्यु, आ शी रीते कयु ?

वालके जवाब आप्यो के, पिताजी, मैं माणस ने व्यवस्थित गोठवी दीधो एटले दुनिया आपोआप गोठवाई गई।

पिताजी, आ दुनिया पाछल माणस हतो, तेना टुकडा करनार माणस हतो अने तेनो गोठवनार पण माणस छे।

पिताजी फक्त माणस गोठवाई जाय एटले आखी दुनिया गोठवाइ जाय।

परन्तु आपणे माणस रह्या छीए खरा ? माणस कोने कहेवाय ? वीजु कार थवानी आशा राख्या सिवाय फक्त माणस वनीए।

युद्धमां क्षमा

अधमथी हणाएला, पोताना पूज्य पितानु वेर वालवा महाभारतवा ना युद्ध नी घोर अधारी राते अश्वत्थामाए भयकर दुष्कृत्य करी नाख्यु।

पडावमा पोताना माता-पिता नी छायामा निश्चित पणे पोढेला नवजुवानोने छूपी रीते रहेंसीज नाख्या। अधम नी सामे अधम आव्यो। एक अधम अनेक अधर्मनु कारण वने छे ते आपणे सौ अनुभवीए छीए छता ते छुटतो नथी ते आश्चय जी वात छे ने ? आपणे ज करीए छीए ते धम छे के अधम ते जाणवानीजी ज दरकार जो आपणे न करता होइये तो अधर्म केयी रीते छूटे भला। आपणे जे काई करीए छीये ते ज आपणो धम कर्तव्य, न्याय अने सत्य माणी वेठा छीए। परन्तु आपणी सामे ज्यारे कोइ व्यक्ति आपणी द्रष्टिए अधम आयरे (एनी द्रष्टिए तो धम होय छे) त्यारे आपणे पण आपणा मन ना धम ने आचरीए छीये। सामी व्यक्ति माटेनो धर्म आपणने अधर्म लाग्यो, तो आपणो धर्म तेने शु लागशे ? परन्तु तेना करेला अधमने क्षमा आपीए तो ? अधम पण धमनु कारण वनी जाय।

क्रोधथी धमधमत अर्जुन पुत्रहत्यारा ने पकडी द्रौपदी समक्ष लाव्यो। द्रौपदीने कह्यु-बोल आने शी सजा करू ? पुत्र हत्यारा ने जोई द्रौपदीए पण चडी स्वरुप धारण कयु। वीजी ज पले तेनु मात हृदय जागी उठयु अने स्वामिनाथ अर्जुन ने कह्यु, के, 'हे आयपुत्र, छोडी दो एने, हु तेनो जान लेवा नथी इच्छती। हु जेम दुःखी छु तेम तेनी माँ दुःखी थशे। एकमा वीजी माँ नु दुःख केम करी जोड शके ?

मारा सतानो पाछा आवे तेम नथी तो पछी वदलो लई वीजी कोई माताने दुःखी शा माटे करु ? तमे मौ पण तेने क्षमा आपो।

भयथी थरथर ध्रुजतो अश्वत्थामा पोताने, पुत्र वियोगी माता-पिता क्षमा आपता जोई ने स्वस्थ थयो परतु पोताना घोर अत्याचार नो पश्चाताप अने शरम थी, जे पोताना मृत्यु थी पोतानी माताने दुःख थवाना विचार मात्रथी जे ध्रुजी उठतो हता त नीचे मस्तके उभो रह्यो।

द्वेप नी सामे द्वेष ने बदले दुश्मनने महात करवा नो आज महामाग नथी भासतो ?

"जन-जन के वल्लभ आचार्य विजय वल्लभ"

श्री नरेन्द्र कोचर

अनादि काल से ही सन्तों, मुनियो, महात्माओ तथा विशिष्ट महापुरुषों का सभी देशो और समाजो मे सम्मान होता आया है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व राजगृही नगरी मे एक ओर मगध सम्राट श्रेणिक थे तो दूसरी ओर आध्यात्मिक जगत के सूर्य, मानवता के प्राण, शासन भगवान महावीर। सम्राट श्रेणिक के नाम को आज वहुत कम लोग जानते है लेकिन महावीर को आज सारा विश्व जानता है, स्मरण करता है। महावीर स्वामी के पश्चात् भी अनेकों सन्त हुए जो स्वयं आध्यात्मिकता के मार्ग पर चले और समाज के प्रेरणाश्रोत वनें। ऐसे ही महापुरुषों की माला के एक वहुमूल्य रत्न थे, गुरु आत्म (न्यायाम्भोनिधि आचार्य देव श्री १००८ विजयानन्द सूरिश्वरजी महाराज।)

ऐसी महान् विभूति पद विहार करते हुए गुजरात पधारे। एक जगह उनका प्रवचन चल रहा था-प्रवचन स्थल श्रोतागणो से खचाखच भरा हुआ था, उनका एक-एक शव्द जनता के हृदय मे उतर रहा था. उस समय एक १५ वर्ष का वालक भी वहा था, सभी लोग चले गये पर वह वालक दीवार का सहारा लिए वही वैठा रहा। गुरु आत्म ने विचार किया. कोई दुखी व साधनहीन नवयुवक

आचार्य श्री विजय वल्लभ

किसी अभाव की पूर्ति की याचना करने वैठा है। लेकिन जव उन्होंने वालक को बुलाकर पूछा और वालक ने जो उत्तर दिया. वो मन को छू लेने वाला था। उस वालक ने याचना भरी आवाज मे कहा—मुझे आत्म कल्याणकारी धन की आवश्यकता है। गुरु आत्म तत्काल जान गये कि इसके हृदय में सच्चे वैराग्य की ज्योति प्रकाशमान है। जिसकी किरणे समाज, देश व विश्व का कल्याण करने को लालायित है। उसे केवल सहारा व निमित्त कारणो की आवश्यकता है। उस काल मे गुरुआत्म से वढकर सहारा व पथ-प्रदर्शक कौन मिल सकता

था ? उस बालक का नाम छगन था ?

धर्म परायण और व्यवहार शुद्धि के उपासक श्री दीपचन्द भाई व धर्म परायणा इच्छा बाई की कोख से वि स १९२७ कार्तिक शुक्ला २ को गुजरात के बडौदा शहर मे बालक छगन का जन्म हुआ था । बाल्यावस्था म बालक पर से पिता एव माता का सहारा छिन गया, माता के अन्तिम समय मे बालक ने पूछा—मुझे किसके सहारे छोड कर जा रही हो, माता के पास एक ही उत्तर था "अरिहत की शरण" । ये शब्द छगन के भावी जीवन के बीज निहित किये हुए थे । सयोग से उसे गुरु आत्म के दशन हुए । अपने मार्ग पर दृढ रहते हुए बालक छगन ने गुरु आत्म के वरद कर-कमलो मे वि स १९४४, वैसाख शुक्ला १३ को राघनपुर (गुजरात) मे मुनि श्री हर्ष विजय के शिष्य बनकर जिनदीक्षा अगीकार की ? दीक्षा के बाद नाम मुनि वल्लभ विजय रखा गया ।

दीक्षा लेते ही मुनि वल्लभ ने अपनी सारी शक्ति भगवान महावीर के श्रेष्ठ साधुओ के समान श्रुताराधना मे लगा दी । बचपन में मात-पिता का सहारा छिन गया दीक्षा लेने के कुछ समय बाद ही वि स १९४७ चैत्र शुक्ला १० को मुनि वल्लभ विजयजी के गुरु मुनि श्री हर्ष विजयजी का स्वर्गवास हो गया । इसके बाद गुरु आत्म के साथ विविध ग्रामो, नगरो व शहरो मे विहार करते हुए मुनि वल्लभ विजयजी ने अनेको शास्त्रो व साहित्य का अध्ययन किया । वि स १९५३मे गुरु आत्म का स्वर्गवास होगया अपने अन्तिम समय मे गुरु आत्म ने मुनि वल्लभ को यह सन्देश दिया कि पजाब मे लगाये गये धम के पौधो की सार सभाल तुम्हें करनी है धम की रक्षा के साथ-साथ तुम्हे सरस्वती मदिरो की स्थापना करवाने मे किसी प्रकार की कोई कमी नहीं रखनी है । गुरु के आदेशो को शिरोधाय कर मुनि वल्लभ ने भारत के अनेक प्रान्तो मे विहार किया और सत्य व अहिंसा की ज्योति का लोगो को दर्शन कराया ? जैन-धम व समाज पर होने वाले आक्रमणो से सघ की रक्षा की, देश में शिक्षण सस्थाओ का जाल बिछा दिया । शीघ्र ही अपनी योग्यता व सेवा भावनाओ मे आप सघ के हृदय सम्राट बन गये । सघ ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए वि स १९८१ माग शुक्ला ५ को लाहौर मे आचाय पदवी प्रदान की।

वि स २००१ मे आपका चातुर्मास बीकानेर था उन दिनो वहा भगवान की रथयात्रा का माग गच्छो के समुचित क्षेत्रो में विभाजित था। आपने इस गवाड (बीकानेर मे मुहल्ले को गवाड कहते हैं) बन्दी को बन्द करने का बीडा उठाया । आपके सामने प्रस्ताव आया कि आपकी उपस्थिति म रथयात्रा सभी गवाडो मे घूम सकेगी परन्तु हमेशा के लिए आग्रह मत कीजिये । आपने तत्काल उत्तर दिया, "मेरी उपस्थिति म आप चाहे पुरानी परम्परा पर कायम रहिये, परन्तु मेरे जाने के बाद हमेशा के लिए भगवान की रथयात्रा का माग निर्बाध स्वीकार कर लीजिये ।" प्रतिष्ठा व नाम के मोह का ऐसा अभाव बहुत कम देखने को मिलता है। आपकी सच्ची शासन सेवा रग लाई और गवाड बन्दी हमेशा के लिए खत्म हो गई। आज भी निर्बाध रूप से कार्तिक पूर्णिमा के दिन भगवान की रथ यात्रा शानदार निकलती है। आचाय विजय वल्लभ सूरिश्वरजी ने जो भी काम किये व सभी गुरु आत्म के नाम व स्मृति के लिए किए। उन्होंने आचार्य देव श्री विजयानन्द सूरिश्वरजी के मिशन (सरस्वती मन्दिरो की स्थापना, विश्व प्रेम व व्यसनमुक्त समाज) को सफल बनाने मे अपने आपको समर्पित कर दिया। उनकी प्रेरणा से अनेक सरस्वती मन्दिर, जैसे श्री आत्मानन्द जैन गुरुकुल गुजरावाला, श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कालेज, श्री पार्श्वनाथ विद्यालय वरकाणा श्री आत्मानद जैन कालेज अम्बाला, तथा ऐसे ही अनेक विद्यालय एव कॉलेज तथा

कन्या शालाएं स्थापित करवाई। जो लोग गुरु वल्लभ को एक गच्छ विशेष का ही आचार्य मानते है वे इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकते कि उनमें सामुदायिक वृत्ति का अभाव था। वे केवल जैनाचार्य न होकर जन-जन के आचार्य थे।

उन्होंने अपने जीवनकाल में सम्प्रदाय भेद एवं गच्छ भेद से सर्वथा ऊपर उठकर यहां तक कि अजैन छात्रों की सहायता की। एक गांव में हरिजनों के लिए कुआं बनवाया। उनके प्रवचनों से प्रभावित होकर गुजरांवाला गुरुकुल के एक जमीदार ने अठाई तप किया। दिगम्बर मन्दिरो मे भी वे जाते थे, प्रश्न किये जाने पर वे कहते प्रतिभा तो तीर्थंकर की है। ई. सन् १९५३ में साध्वी श्री मृगावती श्रीजी का चातुर्मास कलकत्ता में था, कुछ श्रावकों की विनती पर आचार्य विजय वल्लभ सूरिश्वरजी ने साध्वीजी को खरतरगच्छ मे प्रचलित श्री समय सुन्दरजी का टीकावाला कल्पसूत्र वांचने की सहर्ष अनुमति दी। जैनों के सभी सम्प्रदायो को एक सगठन मे लाने की सच्ची तड़फ आपके हृदय में थी। आपने एक जगह यह घोषणा की " अगर एकता मे मेरी आचार्य पदवी बाधक है तो इस पदवी को मैं सहर्ष त्यागने को तैयार हू। मुझे किसी अलंकरण या पदवी की आवश्यकता नही है," मुझे पद नही काम चाहिए। मै पदवी से कीमती वस्तु आपसे मांग रहा हं, आप लोग एकता मे रहो, गरीब भाई-बहिनों की सुध लो, उनकी पीड़ा को समझो।" जहा एक ओर हम देखते ही है कि गुरु वल्लभ को पदवी का लोभ नही था वे कार्य चाहते थे, आज इसके विपरीत हो रहा है, आज लोग पद चाहते हैं। पद पर बैठकर भी अपनी जिम्मेदारियों से पीछे हटते है। गुरु वल्लभ के तप, त्याग, आदर्श चरित्र व धर्मोपदेश से ही प्रभावित होकर पं० मोतीलाल नेहरू ने हमेशा के लिए धूम्रपान का त्याग किया था।

दु:खी विपत्तिग्रस्त व साधनहीन मानव को देखकर उनका हृदय रोने लगता था, विद्या की साधना मे किसी को भी कठिनाई में देखकर उनके नेत्र अश्रुरूपी मोतियों को बिखेरने लगते थे। वे समाज को वास्तविक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर देखना चाहते थे, उन्होंने उद्घोषणा की थी, "समाज का उत्थान मात्र बातों से नही होगा और न होगा उपाश्रय मे बैठकर व्याख्यान देने से।" जब तक रचनात्मक कार्य नही होगा, समाज में जागृति नही आयेगी। उनका सदैव यही कहना था कि पीड़ित एवं साधनहीन बहिन-भाइयों की सेवा करना सच्चा प्रभु प्रेम है।

होशियारपुर पधारने पर गुरुदेव ने पंजाब संघ को जैन गुरुकुल बनवाने की ऐसी ललकार दी कि जहा श्रद्धालु बहनों ने अपने तन से स्वर्ण आभूषण उतार कर गुरु-चरणों में अर्पित कर दिये वहां भाइयो ने भी अपनी तिजोरियों के मुंह खोल दिए। ज्ञान पूजा के इस महान् यज्ञ में सभी ने अपना योगदान किया। फलस्वरुप जैन गुरुकुल गुजरांवाला की स्थापना की नीव होशियारपुर में रखी गई। वे देशभक्ति के लिए भी सदैव तैयार थे, उन्होने विदेशी वस्तुओं के त्याग व खादी के वस्त्र पहनने की प्रेरणा सदा देशवासियों को दी तथा स्वयं भी खादी पहनते थे।

एक ज्ञान भडार का उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा "डिब्बे में बन्द ज्ञान द्रव्य श्रुत है, वह आत्मा में आये तभी भावश्रुत बनता है।" उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि जैन विश्वविद्यालय स्थापित होवें जिससे प्रत्येक जैन शिक्षित होकर, धर्म को बाधा न पहुंचे इस प्रकार राज्याधिकारी में जैनों की वृद्धि हो। दुर्भाग्यवश उनका यह स्वप्न हम अभी तक साकार नही कर पायें है। देश के विभाजन के समय पूज्य गुरुदेव पाकिस्तान मे थे। वहां से अकेले आने से आपने इन्कार कर दिया और कहा-जब तक

मेरा एक भी सहधर्मी यहा रह जाता है, मैं उसे निराधार निराश्रय छोड कर आना अधर्म समझता हू। सहधर्मी सेवा का ऐसा उदाहरण अन्य कही नही मिलता। सहधर्मी सेवा उनमे कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने हमेशा साम्प्रदायिकता का अन्त करने का प्रयास किया। सभी जैनो का प्रेरणा दी कि वे दिगम्बर और श्वेताम्बर के विशेषणो को छोड़कर 'जैन' का सरल विशेषण ग्रहण करें।

आन वाली पीढी को सुसस्कारमय बनाने के लिए उन्होंने हमेशा स्त्री शिक्षा का प्रचार किया।

उन्होंने स्वगवास के नौ वर्ष पूर्व कहा था कि — 'जब तक इन नाडियो मे रक्त प्रवाहित है, हृदय मे धडकन है तब तक एक जगह नही बैठना है।" मानव मात्र के लिए उनके हृदय मे करुणा थी। व कहा करते थे कि एक ऐसे शोषणहीन समाज की रचना हो जिसमे कोई भूखा या प्यासा न रहे। वे धर्म की सत्यात्मकता में विश्वास रखते थे। वे रूढीवाद के विरोधी तथा प्रगतिशीलता के समथक एव प्रेरक थे। वे कहा करते थे कि हमें समय के अनुसार अपने जीवन को ढालना चाहिये। जो व्यक्ति समय के अनुसार नही चलता है वह अपने जीवन में कभी उन्नति नही कर सकता। वे चाहते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि जिससे विद्यार्थी शुद्ध एव आदश जीवन वाला बनें। उसमें मानवता, करुणा तथा प्राणी मात्र के लिए प्रेम-भाव उत्पन्न हो। उसका खान-पान रहन-सहन आचार विचार शुद्ध हो। ऐसे ही विद्यार्थी समाज के हीरे हैं हीरों की कीमत चमक के कारण होती है जब कि मनुष्य की कीमत उसके चरित्र के कारण होती है।

नवकार महामत्र की आराधना करते हुए वि स २०११ आश्विन वदी १ ई सन् १९५४ की २२ सितम्बर को बम्बई में इस भौतिक देह को त्याग कर अमरत्व की प्राप्ति की। आपकी श्मशान यात्रा का दृश्य बम्बई के इतिहास मे अपना अपूर्व स्थान रखता है। लाखो की सख्या मे लोग उस अतिम यात्रा में अश्रुपूरित नेत्रो के साथ सम्मिलित हुए। सारा बम्बई बाजार उस दिन स्वत ही बन्द रहा। सभी भक्त अपने उस वल्लभ को याद करके भाव विह्वल हो रहे थे।

ऐसी महान् विभूति को जैनाचार्य कहना उन्हें एक सीमित दायरे में बाधना होगा। उनका हृदय विशाल था मानव के लिए उनके हृदय में पीडा थी। जन-जन उन्हे अपना वल्लभ अपना सहारा अपना सच्चा पथ-प्रदशक मानता था। वे जन-जन के आचाय थे।

उनकी प्रशस्ति में राष्ट्रसन्त कवि श्री अमर मुनिजी 'सर्वतोमुखी व्यक्तित्व के धनी आचाय विजय वल्लभ सूरि" नामक लेख में लिखते हैं— आचायजी बहुत कोमल, सवेदनशील एव सहृदय व्यक्ति थे, उनके अन्तर का कण-कण उज्जवल मानवीय गुणो से ज्योतिमय था। वे करुणा के तो जीवित प्रतीक थे।"

न्यायाम्भोनिधि आचाय भगवन्त श्रीमद् विजयानन्द सूरिश्वरजी महाराज (आत्मारामजी) के पट्टधर पजाब केसरी, अज्ञान तिमिर तरणि, कलिकाल कल्पतरु, भारत दिवाकर, सयम के चक्रवर्ती आचाय भगवन्त श्रीमद् विजय वल्लभ सूरिश्वर जी महाराज के अधूरे कार्यो को पूरा करके ही गुरुभक्त उन्हें सच्ची श्रद्धाजलि दे सकते हैं।

●★●

कविता

श्री प्रकाशचन्द बी. गांधी

सुन सुन मेरे स्वामी, सुन सुन मेरे स्वामी
तेरे नाम जपता हूँ, नाम जपता हूँ तेरा ध्यान धरता हूँ
सुन मेरे स्वामी...............

जनम जनम भटका मिला, ना प्यार तुम्हारा
सुन सुन मेरे...............

रूप तेरा हजारा, नाम तेरा हजार...... 2
लाखों में एक नाम, जिन वर तेरा,
भूल गया मैं राह तुम्हारा,
पथ भूला को, राह बताना,
सुन सुन मेरे...............

वचपन मेरा गया, खेल खिलौने में............................ 2
जवानी वीत गयी, मौज मजे में,
मानो न मानो, मरजी तुम्हारी,
सुख दुख में तुम्हीं मेरा साथी
सुन सुन मेरे...............

आत्मानन्द जैन मण्डल सबको कहता,
भक्ति में भगवान सभी समझता,
गीत तुम्हारा गाता रहूंगा,
प्रीत प्रभु से करता मैं आया
सुन सुन मेरे...............

卐✱卐

"जीवन के साथ-साथ"

संग्रहकर्त्ता : भगवान जी भाई वी०शाह

लेने के लिए कोई चीज है तो	ज्ञान	कहने के लिए कोई चीज है तो	सत्य
देने के लिए कोई चीज है तो	दान	रखने के लिए कोई चीज है तो	इज्जत
पीने के लिए कोई चीज है तो	क्रोध	छोड़ने के लिए कोई चीज है तो	मोह
खाने के लिए कोई चीज है तो	गम	फैंकने के लिए कोई चीज है तो	ईर्ष्या
हटाने के लिए कोई चीज है तो	अनीति	अपनाने के लिए कोई चीज है तो	जैन धर्म

धर्म और धार्मिक

डॉ० आदित्य प्रचण्डिया 'दीति'

शायद यह आप जानते हैं कि ओछा आदमी थोडे पर ही मानी हो लेता है क्योकि उसका बहुत देखना नही हो पाया है।

सच्चे अर्थो म ओछा छोटा होता है, वह अहम् मे आवद्ध और सकीणता से सम्पृक्त हाता ह। आज के मनुष्य की भी यही मनोदशा है। वह सीमित दायरे मे वधा अपन अस्तित्व को खतरे मे डाले हुए है और अपने अभ्युदय मे अवरोध पदा किए हुए हैं।

हमे आ ममुखी वनना चाहिए। इसके लिए अन्तर-दृष्टि की अपेक्षा होती है। अन्तर-दृष्टि का विकास ही धर्म का महनीय प्रयोजन है। साधक सदा कहते रह हैं कि आँखो को मूदकर देखने का अभ्यास करना चाहिये। कण को वद कर बाह्य शब्दो मे दूर अन्तरनाद का श्रवण लाभ लेना चाहिए। एक नही सभी इन्द्रियो को अन्तर्मुखी बनाने का उपक्रम करना चाहिये। लेकिन हमने इस दिशा म गौर नही फरमाया। धम के साथ बाह्य विराम को सश्लिष्ट किया। धार्मिक को सहिष्णुता का सत्कार करना चाहिए। धन वभव और कष्ट मे परिहार का भाव नही होना चाहिए। आज का व्यक्ति जो धार्मिकता का आवरण ओढे है वह परिस्थिति से जूझने की बात नही चाहता वह तो परिस्थिति से छुटकारे की कामना करता है।

धार्मिक का प्रथम करणीय कर्म पवित्रता की ओर प्रयास होना चाहिए। पवित्रता विना धार्मिकता वैधव्य सी प्रतीत होती है। घिसे पिटे शब्दो के स्मरण मे और बैसाखी के सहारे सिसकती रूढिया के प्रचलन मे धार्मिक आज का फसा हुआ है। धम से परे अनुभूति से कोसो दूर वह बाह्य प्रदशन म भौतिकता के चाकचिक्य मे लिप्त है। उसका अपना कुछ भी नही है वह तो दूसरो के चिन्तन-कथन पर चलायमान है। वह अनुभव की आच पर स्वण सदृस स्वय को तपाना नही चाहता है। वह धम की दुहाई देते हुए अधम का महाकाव्य रचता है। धार्मिकता का अभिनय कर अहम् को आकार देता है।

बन्धुओ, विचारिए तो एक क्षण, क्या आप धम मय हो रहे हैं? तो निस्सदेह आनदानुभूति तथा शाति का रसास्वादन कर रहे ह। अन्यथा धम के नाम पर उसकी प्रतिच्छाया का स्पश पा रहे हैं। असल मे रसाभास ही हो रहा है।

विभावो-कषायो की अल्पता का होना ही धम का साकार होना है।। ज्ञान, आनन्द और शक्ति

इन त्रय समीकरणों के वि कास में धर्म की उपस्थिति है । धर्म वह संजीवनी देता है जो पर-पदार्थ से अप्राप्य है, यह तो आत्म रमण में सम्भाव्य है । वस्तुतया धर्म अवाच्य है वह तो गूंगे का गुड़ है । धार्मिक उसे अनुभूति कर अद्‌भुत आनंदार्णव में अवगाहन करने लगता है ।

卐卐卐卐

श्री मणिभद्र वीर जैन तीर्थ

मु. आगलोड ता विजापुर जि. मेहसाणा (गुजरात)

यह तीर्थ ३३६ वर्ष पुराना हैं । उसके पहले भी यहा पर ही श्री मणिभद्र का मन्दिर था । यह मन्दिर शिखरबन्धी है । यहां पर जैन धर्मशाला और आधुनिक भोजनशाला और जिनमंदिर वासुपूज्य भगवान का है, योगाश्रम भी है । इस तीर्थ में भोजनशाला और धर्मशाला पू० आचार्यदेव श्रीमद् विजय आनंदघन सूरिश्वरजी महाराज ने उपदेश देकर बनवाई है । फोन नं० ३४ है ।

श्री मणिभद्रदेव के पूर्वभव में उज्जैन के ओसवाल वंश में माणेकशाह के नाम से जन्म हुआ था और उन्होने आचार्य हेमविमलसूरिजी का के उपदेश से समकित मूल बारह व्रत ग्रहण किये और शत्रुंजय के लक्ष्य से नवकार मंत्र का ध्यान करते हुए मगरवाडा (गुजरात) के जंगल में स्वर्गस्थ हुए और इन्द्रदेव मणिभद्रदेव के भव मे उत्पन्न होकर पूज्य गुरुदेव को दर्शन दिये । फिर उनकी मगरवाडा, उज्जैन और आगलोड़ में स्थापना की गई । यहां पर अनेक भक्त समुदाय यात्रा करने को आते हैं ।

●

दयालु मनुष्य, अभिमान शून्य व्यक्ति,
परोपकारी और जितेन्द्रिय
ये चारों ऐसे पवित्र खम्भे हैं जो पृथ्वी को थामे हुए हैं ।

—शिवपुराण

"मुक्तक मकरन्द"

मुनि श्री वीरसेन विजयजी म सा

1 आज !

बीत गया जो दिन, उसकी याद क्यो ?
जो नही आया कल, उसकी फरियाद क्यो ?
ऐसे ही खो न दें, अमूल्य क्षण आज का,
ईश्वर छोड नश्वर मे, होत बरबाद क्यो ?

2 मजूर हैं ?

तेरे बिन अन्य को, मेरा न मन चाहे,
प्रतीक्षा का खिला पुष्प, देखे मेरी निगाहे,
वसन्त हो या पतझर, सब मुझे मजूर है,
क्या करू इस दुनिया को, यदि तू मुझमे दूर है।

3 चाह जगा दो !

ससार मे म भूला हूँ, सच्ची राह बता दो,
विषय कषाय की मेरी, बुरी आह बुझा दो,
पत्नि-पुत्र-परिवार' पैसा मे मैं फसा,
मेरे दिल मे प्रभुजी, तेरी चाह जगा दो।

4 क्या अपराध ?

चदन के आसू से, महावीर वापस पधारे
परन्तु क्या अपराध, हुआ है प्रभु मेरे,
मेरे दिल का देवल, कितने काल से सूना,
बुला-बुला के थका, महावीर क्यो न पधारे ?

5 कागल नही !

तरसे नैनो मे आज, आज दो करुणा का काजल,
मेरे मन के गगन मे, भर दो ख्याल के बादल,
आप स्वामी हो मेरे, निमत्रण की क्या जरूरत ?
चातक नही भेजते, कभी मेघ को कागल।

6 मै कहा ?

मै मुझे खोज रहा था, लाख प्रति छाया मे,
मै ही खो गया हू, मेरी विछाई माया मे,
पहले भी मैं ही था, आज भी मैं ही हूँ।
मैं मुझे न मिलू, खोजू यह काया मे।

7 बक्षिस नही।

कहा हैं मुझ पापी के लिये, तुझ रहमवाली नजर,
दिल का तिमिर क्योटले, प्रेम की ज्योती बगर,
तू स्वर्ग यदि मुझको देवे, इस भक्ति के बदले मे,
यह तो वेतन है, बक्षिस नही, मुझे तू माफ कर।

8 यश !

लगन मे एक समान कम नही
मानव को मानव मे रस नही,
जीवन नही वह तो मरण हैं
परोपकार से प्राप्त यश नही।

9 व्यक्तित्व,

क्षण से क्षण मिल, बन गयी सदिया,
धागा से धागा मिल, बन गयी चदरिया,
आत्मा तेरी व्यक्तित्व के निसार मे,
प्रत्येक गुणो की बूँदे, बन गयी नदिया

सही-दिशा-निर्देश

श्री धनरूपमल नागौरी, एम. ए. साहित्यरत्न

परम पूज्य शास्त्रकार महाराजाओं ने तीन तत्त्वो की प्ररूपणा की। उन्होने फरमाया कि जो इन तत्त्वों की विशुद्ध आराधना करता है, वह प्राणी भव समुद्र सरलता से तिर जाता है जबकि विपरीत आचरण करने वाला भव भ्रमण बढ़ाता रहता है और चौरासी मे भटकता रहता है।

पर्युषण-पर्व का आठ दिन का काल वर्ष मे ऐसा आता है कि इनमे भवि-प्राणि आराधक भाव से उत्तम आराधना कर कल्याण की ओर अभिमुख हो सकता है। आत्म-कमल को विकसित कर सकता है। स्व एवं पर दोनो का कल्याण कर सकता है।

ये मुख्य तत्त्व है, देव, गुरु और धर्म। सर्व प्रथम स्थान देव का कहा है। देव भी कैसा कि 'जो अठारह दूषणो से रहित एव अष्ट प्रातिहार्य-युक्त। जिसका अपर नाम है, देवाधिदेव, वीतराग अरिहंत परमात्मा। इसीलिये परमगीतार्थ मुनि प० श्री वीरविजयजी ने गाया है कि—"विषम काल जिन विम्व जिनागम भवियन कु आधारा, जिणदा तेरी अखियन मे अविकारा" अर्थात् इस विषम काल यानि पचम आरे मे भविजनो के तिरने के लिये जहाज के समान केवल दो ही आधार है। एक तो जिनबिंब अर्थात् जिन प्रतिमा और दूसरा जिनागम यानि 'जिनवाणी'। इसी बात की पुष्टि करते हुए परम गीतार्थ मुनि श्री देवचंदजी ने भी स्नात्र पूजा में गाया है कि जिन पड़िमा जिन सारखी, कही सूत्र मझार, इम पूजा भक्तें करो।" तात्पर्य यह कि जिन प्रतिमा को, सूत्रो में, शास्त्रों में, आगमो मे साक्षात् जिनेश्वर प्रभू समान ही बतलाया है, अतएव इसकी पूजा, भक्ति, उपासना आराधना आदि उसी रूप स्वयम् समझ कर करो, इसमें परम कल्याण निहित है।

एक लम्बेकाल से जो विशुद्ध विचारधारा प्रवाहित हो रही थी जब शिथिल होने लगी तो पुन. इन दोनो मुनियो के अतिरिक्त उपाध्याय यशोविजय जी मा०आदि कई मुनियो ने, इस विचारधारा की पुष्टि कई स्तवन व गीतो द्वारा की और बतलाया कि नवकार मत्र के द्वारा जिन प्रतिमा की भक्ति एव आराधना कल्याण के लिये सर्वोत्तम मार्ग है, इसलिये विपरीत मार्ग मे भटकने मे हानि ही हानि है।

किन्तु कतिपय वर्षो मे यह भावना विकृत हो गई। हमारा देव गौण हो गया और गुरु तत्त्व प्रधान हो गया तथा धर्म तत्त्व तो स्वार्थ भावनाओं में विलुप्त सा हो गया। कहने का आशय यह कि जो प्रधान एवं सर्वोपरि तत्त्व था, उसे हमने नंबर दो का दर्जा अथवा यों कहे तो भी चलेगा कि उसे

पद हीन कर दिया और स्वार्थाभिभूत होकर नवर दो को प्रथम कर दिया। परिणाम उसका समक्ष ही है। हम कहा हैं और कहा जा रहे है, सब सामने है। कई कारणो से मानसिक अशाति व रोग बढ रहे हैं। एक की भक्ति घट रही है और दूसरे की बढ रही है। जो नही होना चाहिये वह हो रहा है। हम सब कर्मवाद को मानते हैं। जानते है कि कर्मानुसार फल प्राप्ति होती है, फिर भी अमुक के प्रति हमारी रागवृत्ति और स्वार्थ-वृत्ति हमे सही मार्ग से भटका रही है। भाग्य से विपरीत न कभी कोई ले सकता है और न कभी कोई दे सकता हैं। लेकिन भाग्य को तेज जितना देव तत्त्व कर सकता है उतना और कोई तत्त्व नही कर सकता हैं।

प्रश्न यह होता है कि जब भाग्यानुसार ही सब कुछ मिलता है तो फिर देव तत्त्व की उपासना व भक्ति करने से भी क्या लाभ? तो कहते हैं कि आपका कहना तो यथाथ है। लेकिन उसका एक वैज्ञानिक कारण ह। वह यह कि देव मे अशुभ कर्म जिसके कारण वस्तु की प्राप्ति मे बाधा पडती है उसे जर्जरित एव निर्जरित करने की एक अनुपम व अपूव शक्ति छिपी हुई है। जब कोई व्यक्ति उसका परम सहारा समपण भाव से लेता है, उस समय उसका सीधा प्रभाव उस प्रच्छन्नशक्ति पर पडता है, वह जागृत होकर पलक भर मे उन उपार्जित कर्मों, बाधाओ और व्यवधानो को चकनाचूर कर देती है। मार्ग एकदम प्रशस्त हो जाता है। फल प्राप्ति सुलभ हो जाती है और कई बार तो अकल्पनीय घटनाएँ घटित हो जाती हैं।

कुछ वर्षों से अनुभव मे आया है और निरन्तर आरहा है कि जिन्होने इस तत्त्व को पुन सर्वोच्चता दे दी उनके बडे-बडे सासारिक काम तो हो ही गये साथ ही वे आध्यात्मिक क्षेत्र मे बहुत आगे बढ गये। ऐसे एक नही सैकडो की सख्या मे उदाहरण सामने हैं। देव को सर्वोच्च मानकर समपण भाव से नवकार मत्र का स्मरण कर भडार भरने से ऐसा कोई कार्य नही, जो देर सवेर न हो। ऐसा कुछ गुरु भगवन्तो के सहवास से अनुभव मे आया है और निरन्तर आ रहा है।

पयु पण पव के परमपुनीत आराधन दिवस हमे सौभाग्य से प्राप्त हुए है। तो आइए, हम अपने परम कल्याण हेतु एक बार फिर विनम्र समर्पण भाव से नवकार मत्र का आश्रय लेकर अरिहत परमात्मा की सर्वोच्च सत्ता स्वीकार कर, उनकी उपासना मे लग जाएँ।

क्रोधादि दोष और कटु बचन को छोड
शान्त और मधुर वचन ही बोलो
और बहुत बकवाद न करो। जितना बोलना
चाहिये उससे न्यून व अधिक न बोलो।

दयानन्द सरस्वती

श्री जैन श्वेताम्बर पल्लीवाल क्षेत्र नव तीर्थस्थली की ओर

श्री भगवानदास पल्लीवाल, जयपुर

समय चलायमान है। समय की अवाध गति को किसी ने नही पहिचाना। जयपुर महानगर के विल्कुल समीप पल्लीवाल जैन श्वेताम्बर वाहुल्य क्षेत्र मे शुरू से ही धर्म आराधकों मे धर्म की भावना बड़ी प्रवल रही है। लोग श्रद्धापूर्वक भावना सहित धर्म की आराधना मे काफी अरसे से ओतप्रोत थे। लेकिन धर्म आराधना के तौर तरीके सिलसिलेवार नही थे।

आचार्य मुनिराजों के विचरण उस क्षेत्र में होते रहे है लेकिन धर्म की आराधना को एक सूत्र मे, शास्त्रोक्त विधि से आराधना के ढंग की विना आशातना वाली रीति मे पिरोने का सूत्रपात हो नही पा रहा था। यह संयोग की वात थी। लोग अपनी मान्यताओ के आधार पर धर्म की आराधना की विभिन्न विधियो का सृजन कर उसी पर श्रद्धापूर्वक अमल कर लेते थे। धर्म आराधकों का धर्म मे आस्था का सवसे वड़ा प्रमाण पूर्णरूपेण रात्रि भोजन वारह महिनों का निषेध है। चाहे छोटा बच्चा हो या जवान या बुजुर्ग सभी रात्रि भोजन का त्याग किये हुए है।

पल्लीवाल जैन श्वेताम्वर वाहुल्य क्षेत्र में मुख्य रूप से हिण्डौन, करौली, गंगापुर सिटी, मंडावर, महुआ, मेड़लीगंज, वैर, मुसावर, दातिया नन्दवई, भरतपुर, हरसाना एवं इनके समीप के लगभग सभी ग्राम जो करीवन 3–4 लाख की पल्लीवालों की आवादी वाले क्षेत्र है।

इस क्षेत्र मे जिन मन्दिरों की अति प्राचीन प्रतिमाओं के साथ बहुलता की विशेषता रही है। अतिप्राचीन प्रतिमाए विराजमान होते हुए भी मन्दिरों का रखरखाव, सेवापूजा नही होने से मन्दिर काफी जीर्णशीर्ण अवस्था में हो गये थे।

आराधको का जैन श्वेताम्वर धर्म प्रधान क्षेत्र होने का इससे और क्या सवसे वड़ा प्रमाण हो सकता है कि वर्तमान श्रीमहावीरजी तीर्थ जो हिन्दुस्तान मे वहुत वडा तीर्थ स्थान माना जाता है। उक्त तीर्थ स्थान को वनाने वाले हरसाने ग्राम के श्री जोधराज जी पल्लीवाल जैन श्वेताम्वर थे। मूर्ति जैन श्वेताम्वर है। यह महावीर जी तीर्थ क्षेत्र भी हिण्डौन से सिर्फ 11 किलोमीटर की दूरी पर होने के साथ ही दोनों ही हिण्डोन एवं श्रीमहावीर जी रेलवे स्टेशन दिल्ली–वम्वई रेल मार्ग पर स्थित है। इस क्षेत्र के स्वामित्व के वारे मे दिगम्वर एव श्वेताम्वर समाज के वीच करीवन 50 साल मे मुकदमे चल रहे हैं जिसमें इस क्षेत्र के काफी गणमान्य लोगों के अलावा श्रीमान

नारायण लाल जी पल्लीवाल का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। श्री नारायण लाल जी पल्लीवाल शुरु से ही धर्म एव समाज की सेवा भावना से प्रेरित होकर पिछले 40-45 सालो मे महावीर जी तीर्थ के निमित्त तन, मन एव धन से सेवा मे जुटे हुए हैं एव यह विवाद न्यायालय क्षेत्र मे आने से जो भी निर्णय होगा वह दोनो पक्षो को मान्य होगा। आज यह केस राजस्थान हाईकोर्ट में विचाराधीन है।

यह पल्लीवाल क्षेत्र हर तरह से सडक याता-यात, रेल यातायात से देश के हर बडे शहर से सुगमतापूर्वक जुडा हुआ है। जयपुर राजस्थान की राजधानी के अतिनिकट होने के साथ ही हर साधन से उक्त क्षेत्र सुगमतापूर्वक पहुचने लायक है।

ऐसे क्षेत्र में जहा धर्म की आराधना की भावना जन जन के मानस मे व्याप्त है, काफी जिन मदिरो की पावन स्थली है जिनमे काफी प्राचीन प्रतिमायें विराजमान होने पर भी, धर्म के आराधको को सही दिशा, सही मोड देने वालो मे सकल्प बद्धता का अभाव खलता रहा था। ऐसे ही समय मे समय ने पलटा खाया एव श्री विजय न्याय सूरी जी महाराज साहब का प्रादुर्भाव इस क्षेत्र मे हुआ जो एक अच्छे लक्षण का द्योतक था। हर तरह से तमाम परि-स्थितियो का महाराज साहब ने विचार किया एव प्रथम सकल्प के रूप मे हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध महावीरजी तीर्थस्थान के समीप महावीर जी रेलवे स्टेशन पर पठादो ग्राम मे महावीर स्वामी के मदिर के नवनिर्माण की पहल की जिसमे उनका मुख्य ध्यान उपयु क्त वर्णित सत्य तथ्य की ओर भी आकर्षित होना था। महाराज श्री ने इस जैन पल्लीवाल क्षेत्र मे सही चीज को पहचाना एव इसी ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर आराधको को सही ज्ञान देने की पहल की जिसके प्रथम चरण में जिन मदिरो का जीर्णोद्धार एव नव जिन मदिरो की स्थापना था।

जहा चाह वहा राह वाली उक्ति यहा पूर्ण-रूपेण चरितार्थ हुई। इसी बीच एक पैदल शिखरजी यात्री सघ का भी पदार्पण इस क्षेत्र की ओर होना था कि बम्बई के श्री वर्धमान सेवा केन्द्र का समुचित ध्यान इस क्षेत्र की ओर गया। फिर कमी किस बात की रहनी थी क्योकि उक्त केन्द्र की ओर से श्रीमान कुमारपाल भाई एव श्रीमान नटवरलाल भाई जैसे कर्मठ, धर्मपरायण, दूरद्रष्टा एव योजना बद्ध कार्यक्रम को मूर्तरूप देने की कला मे सिद्धहस्त महानुभावो ने एक सकल्प किया, बीडा उठाया इस क्षेत्र को धर्म के क्षेत्र मे अग्रणी बनाने के लिए।

इसी कडी में उनकी पारखी निगाहो ने हिण्डौन के सेवानिवृत तहसीलदार श्रीमान कपूरचन्द जी जैन का चयन कर एक ऐसी कर्मठ कडी को पा लिया जिसकी उनको तलाश थी। सकल्प की देर थी अब पूरे पल्लीवाल क्षेत्र के मदिरो का चाहे वे नवनिर्माण होने को थे या जीर्णोद्धार एक लिस्ट बनाई गई। इसके लिए एक समय बद्ध कार्यक्रम तैयार किया गया जिसके लिए श्री जैन श्वेताम्बर पल्लीवाल जीर्णोद्धार कमेटी का गठन कर मुख्यालय हिन्डौन सिटी रखा गया। उसी के अन्तर्गत श्री कपूरचन्द जी जैन पल्लीवाल को श्रीमान कुमारपाल भाई एव श्रीमान नटवरलाल भाई के निर्देशन में उक्त योजना को मूर्तरुप देने की दिशा में तनमन से सक्रिय होना था।

महावीर जी तीर्थ स्थल जैन श्वेताम्बर होने पर भी आज न्यायालय में स्वामित्व के अधिकार हेतु विचाराधीन है। लेकिन उक्त तीर्थस्थली पर जैन श्वेताम्बर पल्लीवाल समाज की एक विशाल धर्मशाला निर्माण की दशा में वहा के काफी लोगो के अथक प्रयास, धन की सहायता आदि के कारण ही वहा एक विशाल दो मजिली धर्मशाला निर्माण हो सकी जिसके पूर्ण तनमन धन के सहयोग में श्रीमान कपूरचन्द जी जैन हिन्डौन, भीखमचन्द जी

शेरपुरवाले, कुन्जीलाल जी हिन्डौन, छीतरमल जी मंडावरवाले एवं श्री नारायणलाल जी पल्लीवाल, जयपुर का प्रमुख हाथ रहा ।

समय बद्ध योजना को मूर्त रुप दिया गया श्री कपूरचन्द जी जैन की देखरेख में । शनै: शनै: निम्न जिन श्वेताम्वर मन्दिर उक्त क्षेत्र में पूर्णरूपेण बनकर तैयार हो गये है। जिसके फलस्वरूप यह पल्लीवाल जैन श्वेताम्बर क्षेत्र अब एक पावन तीर्थस्थली बनने की ओर उमड़ कर सामने आ रहा है ।

स्थान	मूलनायक
1. हिन्डौन सिटी	श्री श्रेयांस नाथ जी
2. पटोदा (श्री महावीर जी स्टेशन)	श्री महावीरस्वामी जी
3. करौली	श्री नेमीनाथ जी
4. झारेडा ग्राम	श्री महावीर स्वामी जी
5. शेरपुर ग्राम	श्री कुन्थु नाथ जी
6. खंडीय ग्राम	श्री नेमी नाथ जी
7. सांथा ग्राम	श्री कुन्थु नाथ जी
8. परवेणी ग्राम	श्री महावीर स्वामी जी
9. वडोदा कान	श्री विमलनाथ जी
10 खेड़ली गंज	श्री मुनिसुव्रत स्वामी जी
11. अलीपुर ग्राम	श्री वासुपूज्य जी
12. वीचगांव	श्री सम्भवनाथ जी
13. नंदवई	श्री महावीर स्वामी जी
14. सिरस (छोटे महावीर जी)	श्री महावीर स्वामी जी
15. वैर	श्री महावीर स्वामी जी
16. समराय ग्राम	श्री कुन्थुनाथ जी
17. गढ़खेड़ा	श्री पार्श्वनाथ जी
18. वामनवास	श्री शांतिनाथ जी
19. ठहरामोड	श्री सम्भवनाथ जी
20. मण्डावर गांव	श्री सुमतिनाथ जी
21. मण्डावर मण्ड़ी	श्री महावीर स्वामी जी
22. करमपुरा ग्राम	श्री महावीर स्वामी जी
23. वालघाट ग्राम	श्री महावीर स्वामी जी

निम्न जिन मन्दिर अभी निर्माणाधीन या विचाराधीन हैं :—

1. हिण्डौन सिटी की मण्डी में	2. वहरोड
3. पापडदा	4. गुडाचन्द्र जी
5. गंगापुर मिटी	6. हरसाना

सबसे सुखद बात यह है कि उपर्युक्त मंदिरो की शास्त्रोक्त विधि के क्रिया कलापो मे जयपुर के श्री ज्ञानचन्द जी भण्डारी एव श्री धनरूपमल जी नागोरी एव श्री रणजीतसिंहजी भण्डारी का प्रमुख हाथ रहा है।

जयपुर के क्रिया कारको के रूप मे या अन्य विधियो के सम्पूर्ण करवाने वालो के रूप मे उपर्युक्त महानुभावो का पूर्ण हाथ होने पर भी जयपुर समाज का पूर्ण ध्यान देना अपेक्षित है। उक्त पल्लीवाल क्षेत्र को पावन तीर्थस्थली मे परिवर्तित होने पर भी जैसेपहिले बतलाया जा चुका है कि यह क्षेत्र जयपुर के अति निकट एव हर तरह के साधनो से जुडा हुआ होने पर भी आज जयपुर जैन श्वेताम्बर समाज इससे जुडा हुआ नही है जरूरत है। आजयहा के समाज को, जगाने की उक्त तीर्थस्थली को अपना समझने की यह तभी सम्भवहो सकेगा जब यहा से कुछ यात्री सघ उक्त तीर्थ पधारें, देखें एव उसे अपना समझें। इसके लिए बडौदा कान के जिन मन्दिर की स्थापना पर जयपुर तपागच्छ श्री सघ की ओर से एक बस भी उक्त स्थान पर गई थी। जयपुर समाजका परम दायित्व व परमकर्त्तव्य है कि उक्त तीर्थ स्थली की ओर ध्यान दे। धन की कोई कमी नही। वहा जरूरत है सबल देने की, मनोबल को ऊचा उठाने की, प्रेरणा देने की।

" नवकार महामन्त्र "

श्री अशोक कुमार पी तुलसाबोरा

नमो अरिहताण।
नमो सिद्धाण।
नमो आयरियाण।
नमो उवज्झायाण।
नमो लोए सव्व साहूण।
एसो पच नमुक्कारो।
सव्व पावप्पणासणो।
मगलाण च सव्वेसि।
पढम हवइ मगल।

यह नवकार मन्त्र एक छोटा-सा मन्त्र है जिसे मनुष्य सोते, जागते उठते, बैठते, चलते फिरते 'श्री नवकार मन्त्र को याद करते है। श्री जिन शासन का निचोड तथा चौदह पूर्व का सार श्री 'नवकार महामन्त्र" जिसके मन मन्दिर मे निवास करता है उसका ससार मे कोई अनिष्ट नही कर सकता।

जैसे एक छोटी सी चिनगारी विशाल वन का दहन कर देती है वसे ही छोटा सा नवकार मन्त्र अष्टकर्म रूप विशाल वन को भस्मीभूत कर देता है।

श्री "नवकार मन्त्र" के ध्यान से आधि व्याधि, जल, अग्नि चार, सिंह, हाथी, सर्प, सग्राम आदि के भय नष्ट हो जाते हैं।

राधावेध मे सिद्धि प्राप्त करना दुर्लभ नही तथा पर्वत को मूल से उखाडने की क्षमता दुर्लभ नहीं परन्तु "नवकार मन्त्र" की प्राप्ती दुर्लभ है।

भवसागर मे डूबते हुए जीवो को 'श्री नवकार मन्त्र" नाव की तरह प्रबल सहारा है।

सम्पूर्ण भक्ति वाला जीव आठ करोड आठ हजार आठ सौ आठ बार एकाग्रचित्त से श्री "नवकार मन्त्र" का जाप करे तो वह तीसरे भव मे मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

卐卐

"अनमोल वचन"

संकलक—श्री भगवानजी भाई वी० शाह

1. मा और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है।
वाल्मीकि

2. मीठी वाणी मानव शिष्टता द्योतक है।
प्रेमी

3. जीवन फूल है और प्रेम उसकी सुगन्ध ।
अज्ञात

4. जुवान के मुकाबले अपनी आंखों को अधिक तेज रख।
होमी

5. निष्क्रियता मनुष्य के लिए अभिशाप है।
गाधीजी

6. संसार मे ऐसा कोई नही जिससे कुछ सीखा न जा सके ।
अज्ञात

7, दूसरों को प्रेम करने से ही प्रेम मिलता है ।
विनोवा भावे

8. जो इन्सान इच्छाओं से मुक्त है वह सदा स्वतन्त्र है। अज्ञात

9. अतिथि सत्कार से इन्कार करना सवसे वड़ी गरीवी है। इमर्सन

10. शूरवीर वह है जो न्याय का पक्ष ले।
प्रताप

11. जो समय पर मौन रहना नही जानता, वह कैसा अनुशासन है। गांधीजी

12. धर्म का मूल मन्त्र है पाप से वचो।
अज्ञात

13. कुछ लेना चाहो तो कुछ देना सीखो।
सुभाप चन्द्र बोस

14. घृणा केवल प्रेम से ही जीती जा सकती है।
महात्मा गांधी

15. धर्म उसमें ठहरता है जो शुद्ध होता है।
भगवान महावीर

16. ज्ञान का गर्व मत करो।
भगवान महावीर

17. ज्ञान को हम जितना देते हैं वह उतना ही बढ़ता है। भगवान महावीर

18 धर्म का सन्देश है, प्रेम, मैत्री और समानता।
भगवान बुद्ध

19. लाभ होने पर अहंकार मत करो।
भगवान महावीर

20. मन, वाक् और काया के संचय से साधना मे सिद्धि मिलती है। भगवान नेमीनाथ

21: घर में मेल होना पृथ्वी पर स्वर्ग समान है।
अज्ञात

22 आलस्य जिन्दा इन्सान की मौत है।
कबीर

23. ज्ञान ही सवसे वड़ी अच्छाई है और अज्ञानता बुराई है। महात्मा गाधी

24. धर्म शुद्ध आत्मा में निवास करता है।
भगवान महावीर

25. नारी-जीवन की पवित्रता और धर्म की रक्षक है। अज्ञात

कंकाली के वैदिक स्तम्भ

□ श्री शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी,
एम ए-पुरातत्व, एम ए-संस्कृत

(राज्य संग्रहालय, लखनऊ के संग्रह पर आधारित)

भारतीय पुरातत्व एवं कला जगत मे उत्तर प्रदेश के मथुरा जनपद मे अवस्थित "कंकाली टीला" का अनूठा स्थान है। क्योंकि सन् १८८८ से १८९१ मे यहा फ्यूहरर ने उत्खनन किया और टीले के भीतर प्रभूत मात्रा मे जैन मत से सम्बद्ध कलाकृतियाँ यथा तीर्थंकर मूर्तियां, जैन कथानक, आयागपट्ट सर्वतोभद्र, उष्णीष, सूची, शालभंजिकाए एवं वेदिका स्तम्भ प्राप्त हुए हैं। जिसका पर्याप्त संग्रह राज्य संग्रहालय लखनऊ की अक्षय निधि है। ये कला रत्न ई० पू० द्वितीय शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी ई० तक विस्तृत समय का अविरल इतिहास प्रस्तुत करते हैं। सौभाग्य से कुछ प्रतिमाओं व आयागपट्टों पर लेख खुदे हैं। एक प्रतिमा (जे २०)[1] पर मेरा लेख है जिससे ज्ञात होता है 'वौदवे थूव देवनिर्मित' अर्थात् "देव निर्मित स्तूप" था। स्तूप इतना कलात्मक था जिसे देव निर्मित कहा जाता है। यहा पर यह उल्लेखनीय है कि जैन धर्म के दोनो ही मतो से यह कंकाली टीला सम्बद्ध रहा है क्योंकि संवत् ११३६ की प्रतिमाए श्वेताम्बरी थी। माथुर संघ का भी कुछ मूर्तियो पर नाम उत्कीर्ण है।

J–595, शालभंजिका शुगकाल कंकालीटीला, मथुरा
(निदेशक–राज्य संग्राहलय के सौजन्य से)

अस्तु कंकाली की पुरा सम्पदा केवल तीर्थंकर प्रतिमाओ तक ही सीमित न रही बल्कि यहा अत्यंत स्तु खण्डो का भरपूर प्रयोग किया। चाहे शाल भंजिका तोरणद्वार का सिरदल का कोना रोकने हेतु कलात्मक स्त्री आकृति हो (देखिये चित्र १) या तोरण शाखा पर अंकित गृहस्थ जीवन के

१ विदेशियों द्वारा वंदित जैन धर्म व विविध तीर्थकल्प में भी उल्लेख है।
(स्मारिका पार्श्व० नवयुवक मण्डल, ८२ — पृष्ठ १६)

दृश्य। इन लौकिक कथानकों से ज्ञात होता है कि लोक जीवन क्या था। वैदिका स्तम्भ स्तूप की मेधि को सुरक्षित रखने हेतु बनाए जाते थे जिन पर ललनाओं को मनोहारी रूप मे रूपायित किया गया है। ये अशोक वृक्ष, कदम्ब एवं शिरीप जैसे शुभ वृक्षो की टहनियों को पकड़े हुए अंकित है।

यहां पर यह पैरों मे मोटे कड़े, कमर मे करधनी, चूड़ियां, भुजबन्द, तौक, मुक्तायज्ञोपवीत, कुण्डल पहने है। सिर पर बालों को सुन्दरता से सजा रखा है जिसका गांठ युत भाग बांयी ओर दिख रहा है। पीछे अशोक वृक्ष है। सयोग से यह मूर्ति क्षति रहित है (देखिये चित्र २) यहाँ पर वामनक नही हैं। आभूषण भी कम है किंतु सिर

यक्षी, कुषाणकाल कंकाली, मथुरा

पर सामने की ओर अलंकरण पहन रखा है। इसने एक हाथ से वस्त्र- खण्ड तथा दूसरे से वृक्ष की शाखा पकड़ रखी है। इसका दांया वक्ष टूट गया है (देखिये चित्र ३)। यहाँ पर अंकित यक्षी का दांया स्तन तथा कमर से नीचे का अंश अनुपलब्ध है किंतु अवशिष्ट भाग देखें कितना मनोज्ञ है। पीछे कदम्ब या सा वृक्ष है, दाये हाथ से उसे पकड़े है, बायां टूटा हुआ है। गले मे मनको का लम्बा हार, तौक, कानों में कुण्डल, चूडियां, केयूर तथा सिर पर शिरोभूपण पहने है। इसका शिरस्त्राण देखिये तो कितना कलात्मक एवं मनोहारी है।

इस प्रकार माथुरी शिल्प कला में ललनाओं को पुष्प चुनते, नदी स्नान करते, कन्दुक क्रीणा

J 598 यक्षी कुषाण ककाली मथुरा

करते, दीप लेकर जाते. सिर पर मटकी लिए, यहाँ तक की बूटेदार लम्बी आधुनिक स्कर्ट जैसी कहीं २ दोहरी स्कर्ट जैसा वस्त्र भी पहने हुए अंकित पाते हैं।

वैदिका स्तम्भ कंकाली टीला और मथुरा के दूसरे कला तीर्थ जमालपुर टीले से भी मिले हैं किन्तु इन दोनो स्थलों से प्राप्त वैदिका स्तम्भों मे मूल रूप मे अन्तर है जो इस प्रकार है कि बाद वाले

स्थल से प्राप्त स्तम्भो के दूसरी ओर बोधि-सत्व का मुकुट, जातक के दृश्य या राजकुमार सिद्धार्थ के जीवन दृश्य अंकित किए गए पाते हैं जैसे वृद्ध, रोगी या अग्निवेदिका, बोधिसत्व व उपासक आदि कला क्षेत्र के काली के इह वर्णित तथा संग्रह के सभी वेदिका स्तम्भो के पृष्ठ भाग पर खिले हुए कमल का अंकन पाते हैं । इन्हें फुल्ले कहते हैं । कही कही आधा कमल, कही पूर्ण विक-सित, कही कही पर तो पद्म पत्रो को विभिन्न ढगो से प्रस्तुत किया गया है किन्तु कही पर भी तीर्थ कर के जीवन की घटनाओ का इन वेदिका स्तम्भो पर अंकन नही पाते हैं जब कि यहीं के अन्य वास्तु खण्डो पर जैन कथानक अंकित हुए हैं ।[2]

संक्षेप में इन वेदिका स्तम्भों पर अंकित यक्षियो के माध्यम से तत्कालीन समाज की आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति का सहज ही परिचय हो जाता है । उस समय किस प्रकार के आभूषण, वस्त्र समाज मे प्रचलित थे, स्त्रियो की क्या स्थिति थी, मानव का प्रकृति प्रेम कितना उन्मुक्त था । तभी तो वृक्षो, पुष्पो नदियो, पशुओं सभी को अंकित किया । यदि ये मूक साक्षी न उपलब्ध हुए होते तो उस समय के समाज की हम लोग क्या परि-कल्पना करते ।

—सहायक निर्देशक पुरातत्व, राज्य संग्रहालय, लखनऊ

२ जे ६२६ — मैगमेश ।
जे २५४ व ६०६ ऋषभ वैराग्य पट्ट ।
जे ७०७ — वक्षोटा जिस पर देवी अर्हत व स्तूप ।

विपत्ति मे धैर्य, ऐश्वर्य मे क्षमा, सभा मे वाक्य पटुता,
युद्ध मे पराक्रम, यश मे रुचि, शास्त्र मे अनुराग,
ये विशेषतायें महात्माओ मे स्वभाव सिद्ध होती हैं ।

'भर्तृहरि'

अगर मनुष्य निरतर सुखी बना रहना चाहता है तो उसे परोपकार के लिये ही जीवित रहना चाहिये ।

गीत

डा॰ शोभनाथ पाठक
एम.ए.,पी.एच.डी. डी. लिट्

मणिभद्र मानवी गरिमा की, मंगलमय मंजुल थाती है।
जिसकी गरिमा गाते गाते, मन-वाणी नहीं अघाती है ।।

यह जैन जागरण का सम्बल, यह धर्म धुरी है जीवन की,
मानवता का यह मूल मंत्र, कलिका है—दर्शन उपवन की ।।

इसकी उत्तमता को आंकें, जिसमें संदेश समन्वय का।
पांचों व्रत का वरदान जहां, यह श्रेष्ठ पत्र है, अनुनय का ।।

जीवन संगीत सुनाने में, मणिभद्र महत्ता न्यारी है।
इसके आध्यात्मिक सम्बल से, सुरभित जग की फुलवारी है।

तीर्थंकर का अति तेज जहां, श्रमणों-श्रावक की श्रद्धा है।
मानवता के मूल्यांकन में, कुछ रंच मात्र नहीं बाधा है ।।

"श्वेताम्बर तपागच्छ" गरिमा, इसमें ही अचल संजोयी है।
यह है पचीसवां पुष्प प्रखर—जैनागम महिमा बोयी है ।।

यह "वीर" जन्म वाचना दिवस, पर श्रद्धा भाव उड़ेल रहा।
श्रावक-श्राविका-समाज-राष्ट्र-जनता से इसका मेल रहा ।।

मंगल भविष्य की आशा से, नव युग का हम निर्माण करें।
जग भर में फैले जैन धर्म, मानवता का कल्याण करें ।।

आत्मज्ञाता ही सर्वज्ञाता

डा० राजेन्द्र कुमार बसल
अमलाई

विश्व जानने योग्य अर्थात् ज्ञेय तत्वों से भरा है जिसके बारे मे जितना अधिक जाना जाये उतना ही कम है। प्रत्येक प्राणी और विशेष रूप से मानव सदैव इस प्रयास में रहता है कि वह प्रकृति के इन गूढ रहस्यो को अधिकतम सीमा तक जाने। जानने की इच्छा उसकी कभी भी पूर्ण नही होती। यह चिर-प्यास है जो अपूर्णावस्था मे अतृप्त रहती है।

जानने वाला है एक :—

जिसे आत्मा के नाम से पुकारा जाता है और जानने योग्य पदार्थ हैं अनगणित। फिर जानने का समय अल्प है जो व्यक्ति की आयु सीमा से बधा है। अनन्त समय से सारा मानव समूह प्रकृति को जानने मे लगा है इसके उपरान्त जो कुछ भी रहस्य उद्घाटित हुये हैं वे छिपे रहस्यो की तुलना में अणुमात्र भी नही हैं।

निश्चित ही यह स्थिति बहुत ही निराशाजनक है। प्रकृति की यह गम्भीर चुनौती है जिसने मानव के ज्ञान अर्जक की क्षमता पर अनेक प्रश्नचिन्ह लगा दिये हैं। ज्ञान अर्जन मे हमारी इन्द्रिया सहायक होती हैं किन्तु ये भोग का भी माध्यम हैं। ज्ञान और भोग यद्यपि दोनो एक साथ होते दिखायी देते हैं परन्तु इन दोनो के मध्य भेद है, अन्तर है जो व्यक्ति की प्रवृत्ति को बताता है। यह अतर भेद-विज्ञानी ही कर पाता है। अज्ञानी तो भोगेच्छा मे ही लिप्त रहता है पर ज्ञानी तो मात्र उसका ज्ञाता ही होता है।

प्रश्न यह है कि किस प्रकार जानने की जिज्ञासा तृप्त हो और कैसे आत्मा मात्र ज्ञाता ही रहे। यह प्रश्न दो तथ्यो की ओर हमारा ध्यान खींचता है। पहला यह कि कोई जानने वाला या ज्ञाता है और दूसरा जानने योग्य वस्तुयें जिन्हें ज्ञेय तत्व कहते हैं। वस्तुत विश्व के सम्पूर्ण जड-चेतन द्रव्य, अनेकानेक गुण-धर्म एव उनकी नित परिवर्तनशील अवस्थायें सभी ज्ञेय तत्व है। जानने वाला आत्मा स्वय मे ज्ञायक होकर ज्ञेय भी है।

इस युग मे श्रमण संस्कृति के प्रथम उद्घाटक भगवान् ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थंकर महावीर ने इस समस्या का समाधान एक ही शब्द में व्यक्त किया। पहले वे निज आत्म साधना द्वारा पवित्र एव वीतरागी बने और फिर सर्वदर्शी सर्वज्ञाता। उन्होंने कहा कि आत्मदर्शी ही सर्वदर्शी है और आत्म ज्ञाता ही सर्वज्ञाता है। विकार वर्जना विहीन आत्मा जब अपने ज्ञान-आनन्द स्वरूप मे स्थित रहकर आनन्द का अनुभव करता है तब उसकी ज्ञान रश्मियों मे जगत के सभी पदार्थ एक साथ झलकने लगते हैं। कितना आश्चर्य है कि एक आत्मा की शुद्धता-पवित्रता मे समस्त जड चेतन जगत का ज्ञान अणुव्रत सदृश समा जाता है जो जिस प्रकार है वह उसी अनुरूप, बिना चितवन किये प्रतिबिम्बित होने लगता है।

आत्मा की इस अद्भुत शक्ति की ओर वीतराग भगवतो ने हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि—

"जे एगं जाणई ते सव्वं जाणई
जे सव्वं जाणई, ते एग जाणई ।"

अर्थात् जो एक आत्मा को जानता है वह सबको जानता है और जो सबको जानता है वह एक को जानता है । यहां एक को जानने से तात्पर्य अपनी निज की आत्मा को जानने, अनुभूत करने एवं उसमे ही मग्न रहने से है दूसरे शब्दो मे जानने वाले को स्वय अपने को जानना, अनुभूत करना और उसी मे स्थित हो जाना है ।

विज्ञान एव वैज्ञानिको ने अपनी सतत् ज्ञान साधना एवं प्रयोगो से जड़ वस्तुओ के रहस्यो को प्रकट किया और कर रहे है किन्तु वे स्वयं क्या है कैसे है । सुख की अनुभूति एव आनन्द का वेदन कैसे कहां से होता है इससे वे अनजान है । जिस कारण प्रतिभा सम्पन्न होने के बाद भी वे आत्मिक सुख का अनुभव नही कर सके ।

महावीर ने कहा सर्वदर्शी एवं सर्वज्ञाता वनने की शुरुआत आत्मा के परिचय से होती है । उन्होने कहा कि पहले व्यक्ति अर्थात ज्ञाता अपने चैतन्य स्वरूप का निरीक्षण, परीक्षण, विश्लेषण एवं अवलोकन द्वारा यह अनुभूत करे कि वह क्या है और उसका स्वरूप कैसा है । इस कार्य मे उसे वाह्य उपकरणों की आवश्यकता नही है वह ज्ञान स्वभावी अपनी आत्मा को मात्र ज्ञाता न कि भोक्ता, के रूप में ही अपनी आत्मा द्वारा देखें, जाने और उसी मे रम जाये । इसे निज से निज की पहिचान भी कहा जाता है । उन्होने इसे आत्म विज्ञान की संज्ञा दी जिसके अन्तर्गत भेद विज्ञान के उपकरण से आत्मा वीतरागी एवं विज्ञान घनस्वरूप बनकर सर्वदर्शी वन जाता है । ऐसी शुद्ध आत्मा का वर्णन करते हुए कुन्द देव कहते है :—

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी ज्ञान दृग हूं यथार्थ से कुछ अन्य वो मेरा तनिक परमाणु मात्र नही करें ।

वास्तव मे आत्मा एक है, शुद्ध है, सदैव अरूपी है और दर्शन ज्ञान रूप है । इससे भिन्न विकार—वासना एवं जड़ चेतन जगत सभी कुछ अंशमात्र भी उसका नही है ।

यह एक विचित्र एवं आश्चर्य की बात है कि अनंत ज्ञान एवं शक्ति का पुञ्ज आत्मा अपने आप से अपरिचित है । वस्तुत: वात यह है कि हमारी रुचि अपनी ओर नही है । हमारी दृष्टि वहिर्मुखी है । हमने वाह्य वस्तुओ के ज्ञान एवं उनके उपभोग मे ही सुख की कल्पना कर रखी है और उसी मे सुखाभास का अनुभव करते है । आवश्यकता दृष्टि मे परिवर्तन की है । दृष्टि में परिवर्तन होते ही आत्मा का अहं प्रकट होता है और व्यक्ति सच्चे सुख के मार्ग का सहयात्री हो जाता है ।

महावीर ने कहा कि आत्मा की पहिचान कर उसको अनुभूत करना ही अहिंसा है, अपरिग्रह है, सत्य है और ब्रह्मचर्य है । जव तक निज का वोध जीवन मे नही होना तव तक इन शब्दों का कोई मूल्य नही । आत्मा मे क्रोध, ममकार, अहंकार, लोभ एव कपट आदि की उत्पत्ति होना और आत्मा का इस रंग मे रंगना ही हिंसा, परिग्रह, असत् एवं अब्रह्म है । अज्ञान ही सबसे बडा परिग्रह है । अत: इन मनोविकारो को आत्मा से भिन्न समझना और उनकी उपस्थिति में तटस्थता या अनासक्त रूप से रहना ही अपनी एकात्मा के निकट पहुंचने का सद्प्रयास है और अंततः उसी से आनन्द की प्राप्ति एव विश्व ज्ञान का लक्ष्य पूर्ण होता है ।

महावीर का वीतरागी दर्शन किसी व्यक्ति वर्ग या सम्प्रदाय विशेष की धरोहर नहीं है । यह प्राणिमात्र का दर्शन है जो अपूर्ण से पूर्णता, अज्ञान से ज्ञान, असत् से सत एवं विरूप से व्यक्ति को स्वरूप की ओर ले जाता है । अपने को पहिचानना अनुभूत करना ही निज का धर्म है और वही जैन धर्म है । इससे भिन्न जीवात्मा का धर्म कुछ और नही है । यही शाश्वत सत्य है जो स्थानान्तरित एवं कालातीत ह ।

卐卐

"अक्ल की महिमा"

पू उ. श्री पुण्यविजयजी गरिण, वादनवाडी

चार गति मे मनुष्य ही बुद्धिमान व्यक्ति है। उनकी बुद्धि चाहे तो सजन कर सकती है और चाहे तो क्षण मे विसजन भी कर देती है। उसका उपयोग कैसे करना यह उनके हाथ की वात है।

जगत मे चार प्रकार की बुद्धि है।
कार्मिणिकी, उत्पत्तिकी, विनयिकी एव पारिणामिकी।

किसी भी कार्य को करते करते उनमे प्रवीणता प्राप्त हो जाय वह कार्मिणिकी गति— कोई भी चीज न देखी हो, न अनुभव मे आई हो, उनका प्रश्न आ जावें तब तुरन्त जवाब देना वह उत्पत्तिकी गति—

गुरु की सेवा भक्ति विनय से प्राप्त किया हुवा ज्ञान परिपक्व-होता है वह *विनयिकी गति*—

वय की वृद्धि होते जो मति मे परिपक्वता आती है वह पारिणामिकी गति है।

जगत म ऐसा भी आदमी होता है कि वह प्रश्न का उत्तर ऐसा देता है कि वह बधाता नही और सामने वाला व्यक्ति दुविधा म पड जाता है। क्या उत्तर देना ? समझ मे नही आता ऐसा विचार मे डूब जाता है—

एक वार महामतिमान राजा भोज और तार्किक शिरोमणि पडितजी माघ दोनो एक वृद्धा के प्रसग मे आने के बाद कैसे निरुत्तर हो जाते है यह क्या आपको कह देगी। ज्ञान का क्षयोपशम कितना काय करता है ? ज्ञान की बलिहारी है ऐसा भाव आपके अन्तर मे जग जायेगा और अज्ञान को दूर करने के लिये प्रेरणा मिलेगी।

एक दिन राजा भोज और पडित माघ भेष परिवतन करके गुप्त भेष मे घूमने को निकल गये। चलते २ अनजान प्रदेश मे पहुच गये और रास्ता भूल गये।

बहुत प्रयत्न करने पर भी उन दोनो को अपना मार्ग दृष्ठिगत न हुआ। तब उनके दिमाग मे विचार के चक्र घूमने लगे। किसी आदमी को पूछे बिना अपना मूल रास्ता नही मिलेगा।

पडितजी ने दूर-सुदूर दृष्टिपात किया तो एक खेत मे जल सिंचन करती हुई वृद्धा देखने मे आई।

दोनो उसके पास जाकर पूछने लगे माताजी! वह सामने दिखता हुआ रास्ता कहा जाता है ?

वृद्धा ने अपना सिर ऊर्ध्वं करके दोनो को देख लिया और मजाक करने की वृद्धा के मन मे भावोर्मि प्रकट हुई। कहने लगी, "वह रास्ता कही पर नही जाता। वह तो यही स्थिर है। उस पर

चलने वाले लोग जाते हैं ।

भोज राजा ने कहा—हम मार्ग से अनभिज्ञ पथिक है इसलिये आपसे पूछते है ।

पथिक जगत मे दो है । 'एक चंदा दूसरा सूर्य' —आप कौन हैं ? वृद्धा ने कहा,

पंडितजी ने कहा, हम अतिथि हैं ।

वृद्धा ने जबाब दिया, 'अतिथि दो है....एक धन और दूसरा यौवन'....दोनो की कितनी भी रक्षा करो मगर होती ही नही ।

राजा भोज बोला—हम दोनो गरीब है ।

'गरीब तो एक कन्या दूसरी गौमाता है। दोनों को जहां ले जावे वही जाते है....' वृद्धा ने स्पष्ट शब्दो में सुना दिया । आप दोनों कौन है ?

राजा को हुआ, वृद्धा दक्ष एव कोविदा है । अतः उनको सरल रीति से कह दूं जिससे सच्चा मार्ग वतलायेगी । मै राजा हूं ।

क्या आप राजा है ? राजा जगत मे दो है.... एक इन्द्र दूसरा यम .. दोनो जैसी सामर्थ्य किसी में नही है ...'वृद्धा ने कहा ।

हम भद्रिक है । हमको कुछ संसार का दांव-पेच नही आता ।

वृद्धा ने प्रत्युत्तर दिया, 'भद्रिक तो साधु एवं माँ है । साधु सवका कल्याण करता हैं । माँ अपनी संतान का हित सदा इच्छती है ।'

राजा और पंडितजी आश्चर्य में डूव गये। वय में वृद्धा है मगर अक्ल में युवा है—वृद्धा । मन में आनन्द हुआ। वृद्धा कितनी चतुर एवं मनीषी है ।

माघ ने कहा, माताजी ! सुनो ! हम कौन हैं ? हम प्रजा, देश एवं धर्म का रक्षण और दूसरे का अहित करने वाले को शिक्षा करने वाले शत्रु रूप है ।

वृद्धा ने कहा—'ओह ! आपने अच्छी बात की, जगत मे सच्चा शत्रु कौन है यह आप नहीं जानते है । एक राग दूसरा द्वेष ......जो जीव को ससार में रगडपट्टी कराते है .. ....'

दोनो विचार के झूले मे घूमने लगे । वृद्धा तो गजब लगती है । दोनों एक दूसरे के सामने देखने लगे । राजा ने कहा, माताजी ! मान लो हम दुर्जन है ।

मुस्कुराते हुए माताजी ने कहा—'दुर्जन तो एक काम, दूसंरा क्रोध है । जो आदमी को अंधा बना देता है, दूसरा अच्छा दिखाई नही देता ।'

यह सुनते हुए माघ ने कहा—हम दोनों मूर्ख है—

'ओह ! क्या आप मूर्ख है ? मूर्ख तो विना विचारे कार्य करने वाला और गर्विष्ट होता है । विना विचारे बोलना मूर्ख का लक्षण है । गर्विष्ट अक्कड होकर फिरता है मगर जगत मे उनकी कीमत नही होती है ।" वृद्धा ने स्पष्ट कह दिया ।

अन्त मे राजा ने कहा—हम दूसरों को माफी देते है ।

'माफ करने वाले जगत मे दो है—एक पृथ्वी दूसरी नारी । ....दोनों सहन शक्ति में अद्‌भुत है ।' माता ने सुना दिया ।

राजा और पंडितजी दोनों महामतिमान होते हुए भी वृद्धा के आगे वामन जैसे वन गये । अपनी पराजय को स्वीकार करते हुए कहने लगे, आपके आगे हार गये । आपकी अक्ल के आगे हमारी मति चलती नहीं है ।

वृद्धा ने कहा—'मैं सच कहती हूं, आप हार नहीं गये है .. हार खाने वाले दो हैं....एक ऋण वाले दूसरे लड़कियों के पिता....दोनों को रात-दिन चिन्ता को कीड़े काटते है....नीद भी सुख शान्ति से नही ले सकते.......

(शेष पृष्ठ 67 पर)

श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल, जयपुर

प्रगति के चरण

□ श्री अशोक जैन

श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ, जयपुर का ही एक अग है। यह मण्डल युवको का सगठन है जो समाज मे धार्मिक व सामाजिक स्तर पर हमेशा काय करता रहा है।

गत वर्ष सितम्बर माह मे मण्डल की कायकारिणी के वार्षिक चुनाव सम्पन्न हुए जिसमें निम्नलिखित सदस्य निर्वाचित घोषित किए गए —

श्री सुरेश मेहता अध्यक्ष, श्री बलवन्त सिंह छजलानी उपाध्यक्ष, श्री अशोक जैन सचिव, श्री धनपत छजलानी सयुक्त सचिव, एव कोषाध्यक्ष का कार्य उपाध्यक्ष बलवन्त छजलानी को ही सौंपा गया है।

वर्ष भर मे विभिन्न सस्थानो मे आयोजित कार्यक्रमो मे मण्डल के सदस्यो ने सक्रिय भाग लेकर सुन्दर व्यवस्था की है। गत पयुषण पव मे सामूहिक स्नात्र पूजा वाद्य यन्त्रा सहित पढाना प्रारम्भ किया गया जो अभी तक भी जारी है।

मण्डल की ओर से भगवान महावीर के जन्म वाचन दिवस पर सक्रिय कार्यकर्त्ता श्री बलवन्त छजलानी श्री अजीत लोढा, श्री राकेश मुणोत, एव श्रीसुनील सचेती का सघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री कस्तूरमलजी शाह ने पुरस्कार देकर बहुमान किया। मण्डल के सदस्यो ने जनता कालोनी मन्दिर, श्री चन्द्रा प्रभू भगवान का मन्दिर आमेर एव चन्दलाई मन्दिर की पुन प्रतिष्ठा समारोह का काम अपने जिम्मे लेकर सुन्दर व्यवस्थायें कीं।

चन्दलाई मे प्रतिष्ठा समारोह के अवसर पर चन्दलाई ग्राम मे प्रथम बार सास्कृतिक कायक्रम देकर वहा की जनता को भाव विभोर कर दिया। इस साम्कृतिक कायक्रम मे जिन सदस्यों ने भाग लिया उनका बहुमान श्री तपागच्छ सघ के अध्यक्ष श्री हीराचन्दजी चौधरी ने पुरस्कार देकर किया। साथ ही मण्डल के कमठ कार्यकर्त्ता श्री बलवन्त छजलानी जो कि चन्दलाई मन्दिर के सयोजक हैं, उनको भी मण्डल परिवार ने चाँदी का गिलास देकर सम्मानित किया।

मण्डल ने बरखेडा ग्राम मे स्थित श्री ऋषभदेव भगवान के वार्षिक उत्सव पर यातायात व्यवस्था एव भोजन व्यवस्था की अति सुन्दर व्यवस्था की।

मण्डल की ओर से भगवान महावीर की जयन्ती पर श्री सुमतिनाथ जिनालय–आत्मानन्द सभा भवन, घी वालो के रास्ते मे एक सुन्दर झाकी का आयोजन रखा जिसका ११०१ दीप जलाकर श्री पारसदास जी ढढ्ढा ने उद्घाटन किया। यह कायक्रम इतना सुन्दर रहा कि दर्शनार्थियो का जमघट उमड पडा एव इस अवसर पर मण्डल परिवार ने बैंड बजाकर माहौल को अति सुन्दर बना दिया था।

श्री दादावाड़ी मोती डूगंरी रोड पर आयोजित प्रतिष्ठा समारोह मे भी मण्डल के सभी सदस्यों ने भाग लिया तथा साधर्मी वात्सल्य में साधर्मिक भक्ति का लाभ लिया।

मण्डल ने शिक्षा के क्षेत्र को भी पकड़ा है। जो भी निर्धन छात्र-छात्राये है उनको निशुल्क पाठ्य पुस्तको का वितरण किया। साथ ही जिन छात्र-छात्राओ की फीस उनके माता पिता देने मे असमर्थ थे, ऐसे विद्यार्थियो मे करीब २० विद्यार्थियों की फीस भी मण्डल की तरफ से देकर उनको शिक्षा मिलती रहे ऐसी व्यवस्था की है।

युवकों को रोजगार दिलवाने हेतु ग्रीष्मावकाश मे दो योजनायें चलाकर युवकों को रोजगार के अवसर प्रदान करने हेतु भी प्रयास किये हैं, जिसमे कि जवाहरात की कटिंग व पालिस सिखाई गई।

साथ ही साथ मण्डल ने महिलाओं के लिए भी इस क्षेत्र मे श्री जैन महिला उद्योग केन्द्र, जयपुर के साथ समन्वय करके महिलाओं को रोजगार के अवसर दिलवाये है ताकि महिलाये स्वावलम्बी बनें। श्री जैन महिला उद्योग केन्द्र भी निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर है, इसकी कार्यकारिणी में भी मण्डल के कुछ युवा सदस्य है।

मण्डल की ओर से धार्मिक पाठशाला प्रारम्भ की जिसमे महिने भर में सामायिक सीखने वाले बच्चों को पुरस्कार देकर उनका उत्साह बढाया। ५ छात्रों ने पुरस्कार प्राप्त किया। इस प्रकार मडल प्रगति की राह पर अग्रसर है।

आशा है कि आप सभी बड़े बुजुर्गों का मार्ग दर्शन मण्डल को मिलेगा, साथ ही आप मण्डल को तन-मन-धन से सहयोग करते रहेगे।

मण्डल की गतिविधियां सुन्दर ढंग से चल रही है इसके लिए मण्डल श्री जैन श्वे० तपागच्छ संघ के अध्यक्ष श्रीमान हीराचन्दजी चौधरी तथा संघ मंत्री श्रीमान मोतीलालजी भड़कतिया का धन्यवाद दिए बिना नही रह सकता है जिनकी प्रेरणा व सहयोग से आज मण्डल प्रगति कर रहा है। आशा है मण्डल परिवार को श्री संघ का सदैव पूर्ण सहयोग मिलता रहेगा।

(पृष्ठ 65 का शेष)

राजा और माघ पडितजी बडी दुविधा में पड गये। कहने लगा माताजी! आप बहुत बहुत जानती है। हम कुछ नही जानते।

वृद्धा ने मुस्कराते हुए कहा, आपकी बात सच है। किसी को भी अपने ज्ञान का गर्व नही करना चाहिये ! जगत में सेर के ऊपर सवा सेर होता है। आप दोनों को थोड़ा सा आनन्द देने के लिये इतना मधुर वार्तालाप किया है। बुरा मत समझना........

आप और मेरे मे बहुत अन्तर है। कहां सूरज कहा चंदा....? मै आपको पहचानती हूं ...

आप राजेश्वर भोज है और ये पंडित माघ हैं

अभी मै आपको अवंतिका का मार्ग दिखाती हूं, ये कहकर दोनों को सच्चे राह पर विदा दी....

राजा और पंडितजी वृद्धा की अक्ल की प्रशंसा करते हुए राजमहल पहुंच गये।

आपको जो ऐसी अक्ल प्राप्त हुई हो तो परोपकार के कार्य में उपयोग करें। अपने स्वार्थ के लिये नही।

卐●卐

"मार्गानुसार जीने के ३५ गुण"

श्री सुरेश मनसुखलाल मेहता

1 न्यायानुसार धन उपार्जन करना।
2 शिष्ट पुरुषों के आचरण की प्रशंसा करनी।
3 समान कुल व विवेकशील अन्य गोत्रीय के साथ विवाह करना।
4 छः शत्रुओं का त्याग करना (काम, क्रोध, लोभ, मान, हर्ष, मद)
5 इन्द्रियों को वश में रखना।
6 भय वाले स्थानों का त्याग करना।
7 अतिगुप्त, बिना पड़ौसी व अधिक द्वार वाले स्थान पर निवास न करना।
8 पापी (सभी प्रकार के) व्यक्ति से दूर रहना।
9 देशाचार (नागरिकता) का पालन रीति-रिवाज अनुसार करना।
10 निन्दा लायक शब्दों का प्रयोग नही करना। व्यक्ति की निन्दा भी नहीं करनी।
11 आय अनुसार खर्च करना।
12 धन अनुसार ही वेश-परिवेश का पालन करना।
13 माता-पिता की सेवा भक्ति करनी।
14 गुणी जनों का साथ करना।
15 उपकार का बदला उतारने की कोशिश करना।
16 अजीर्णता के समय भोजन का त्याग करना।
17 समयानुसार भोजन करना।
18 व्रतधारी और ज्ञानवन्त पुरुष की सेवा करनी।
19 निंदित कार्यों में प्रवर्तन नही करना।
20, भरण पोषण करने योग्य उपार्जन करना।
21 हरेक कार्य विचार करके करना।
22 हमेशा धर्म सुनना।
23 प्राणीमात्र पर दया करनी व रखनी।
24 बुद्धि के आठ गुणों को धारण करना।
25 गुणीजनों का पक्षपात करना।
26 हमेशा अकदाग्रही होना।
27 निरन्तर विशेष ज्ञान प्राप्त करते रहना।
28 अतिथि, साधु एवं विद्वत्जनों का यथायोग्य सत्कार करना।
29 परस्पर हरकत न होवे ऐसे तरीके से तीन वर्ग (धर्म, अर्थ, एवं काम) साधना।
30 निषेध देश में परदेश गमन न करना एवं मना हो ऐसे समय में कार्य नही करना।
31 खुद पर बल व अबल का विचार करना।
32 जन समूह के मन को मानना।
33 सदैव परोपकार करना।
34 लज्जाशील होना।
35 सौम्यदृष्टि वाला होना—मुखारविन्द पर सदैव शांतता धारण करनी गुस्सा कदापि न करना।

उपरोक्त सभी गुणों का समावेश व्यक्ति विशेष में हो तो धर्मभीरु व लियाकत वाला समझना चाहिये।

"श्रावक के २१ गुण"

1 अक्षुद्र 2 रूपवान 3 शांत प्रकृति 4 लोकप्रिय 5 अक्रूर 6 पापभीरु 7 अशठ 8 सदाक्षिण्य 9 लज्जावान 10 दयालु 11 मध्यस्थ 12 गुणरागी 13 सत्यकायव 14 सुपक्षयुक्त 15 दीर्घदर्शी 16 विशेषज्ञ 17 वृद्धानुगामी 18 विनयी 19 कृतज्ञ 20 परहितकारी 21 लब्धलक्ष।

उपरोक्त इक्कीस गुण जिस व्यक्ति में हो वह आत्मा धर्म को पाने लायक कहलायेगा।

श्री सिद्धाचल (गिरिराज) महातीर्थ पर मोक्ष प्राप्त भव्य आतमाएं (सिद्धीं)

श्री हरीश मनसुखलाल मेहता

१. ऋषभ देव प्रभु के वंशज	असंख्याता
२. श्री पुंडरीक गणधर	पांच करोड़ के साथ
३. द्राविड वारिखिल्ल	दस करोड़ के साथ
४. आदित्ययशा [भरत महाराजा के पुत्र]	एक लाख के साथ
५. सोमयशा [बाहुबलि के बड़े पुत्र]	तेरह करोड़ के साथ
६. बाहुबलि के पुत्र	एक हजार और आठ
७. नाभ विद्याधरी पुत्री चर्चा प्रमुख	चौसठ
८. सागरमुनि	एक करोड़ के साथ
९. भरत मुनि	पांच करोड़ के साथ
१०. अजित सेन	सत्तर करोड़ के साथ
११. अजितनाथ प्रभु के साधु	दस हजार
१२. श्री शांतिनाथ प्रभु के साधु	१,५२,५५,७७७ मुनि
१३. राम-भरत [दशरथ पुत्र]	तीन करोड़ के साथ
१४. पांच पाण्डव	बीस करोड़ के साथ
१५. वासुदेव की स्त्रियां	पैंतीस हजार
१६. वैदर्भी	चौवालीस हजार
१७. नारद ऋषि	इक्यावने लाख
१८. शोम्ब प्रद्युम्न	साढे आठ लाख
१९. दमितारि मुनि	चौदह हजार
२०. थावच्चा पुत्र	एक हजार
२१ शुक परिव्राजक [शुक्राचार्य]	एक हजार सहित
२२. सेलगाचार्य	पाच सौ सहित
२३. सुभद्र मुनि	सात सौ सहित
२४. कालिक मुनि	एक हजार सहित
२५ कदंब गणधर [गत चौवीशी मे]	एक करोड़ के साथ
२६. संप्रतिजिन थावच्चा गणधर	एक हजार के साथ

इसके अलावा भी जिन प्रमुख असंख्याता तीर्थंकरों, देवकी के छः पुत्र, जाली, मयाली उवयाली [जादव पुत्रों] सुव्रत सेठ, मंडक मुनि, सकोशल मुनि अयमुत्ता मुनि संख्या रहित महात्माओं ने सिद्धि पद प्राप्त किया है।

खुले मन का मानवी

—श्री हीराचन्द वैद

ये कस्तूर, तू कस्तूरी तो नही, पर तेरी महक कस्तूरी से कम नहीं।

हजारो वर्षो से प्रवाहित जैन सस्कृति की परम्परा मे श्रमण एव श्रावक का अत्यधिक महत्व है। कस्तूर भाई इसी परम्परा के श्रेष्ठ महाजन थे। वे जन्मे गुजरात मे थे पर सारा देश उनके लिये अपना था। स्वय के निर्मल जीवन साथ ही उत्कृष्ट व्यक्तित्व के कारण वे सब के लिये आदरणीय ही नही, श्रद्धा भाव भी बन गये थे। उनके जीवन की सादगी हरेक के लिए प्रेरक बनी थी।

आदरणीय कस्तूर भाई की उष्मा उनके दैनिक व्यवहार मे स्पष्ट दिखाई देती थी। जैसे-जैसे मैं उनके सम्पर्क मे आया वैसे-वैसे उनकी महानता का दर्शन मुझे हुआ, उनके सस्मरण रह-रह कर याद आते हैं।

कार्यकर्ता के प्रति वे अत्यन्त संवेदनाशील रहते थे। पेढी की तारगा मे हुई वार्षिक बैठक की बात है। वे नये बने हुये ब्लाक के बाहर कुर्सी पर बैठे थे। अनेक मित्र, सहयोगी व ट्रस्टी पास ही खडे थे। मैं उनके पास गया तो वह खडे हुये। मैंने चरण स्पर्श का हाथ आगे किये तो मेरे दोनों हाथ पकड कर बोले "हम लोग तो पैसे खर्च कर सकते हैं इसीलिये क्या महान् बन गये? समाज के लिये तन, मन का जो समर्पण तुम करते हो वह बहुत बडी बात है। हमारे दिल मे तुम्हारे लिये खुला आदर है।" कैसी महानता थी उस व्यक्तित्व मे।

उनके पास व्यक्ति की परख करने की अनोखी सूझ थी। वे प्रशसा से कभी भ्रम मे नही पडते थे। उनका जितना खरापन विरले ही मे देखने को मिल सकता था। अहमदाबाद मे पेढी की मीटिंग का प्रसग था। मैंने एक प्रस्ताव रखा कि अगली बैठक राजस्थान मे राणकपुर मे रखी जावे और वो दो दिन की रखी जावें। मेरे समीप ही बैठे हुए उसी क्षेत्र के एक प्रतिनिधि सद्‌गृहस्थ खडे होकर मेरे प्रस्ताव का समर्थन करने लगे। कस्तूर भाई उनसे परिचित थे। उन्हे बैठ जाने के लिये कह कर वे बोले 'हुं जाणु छुं के आप केटेला जवाबदार छो' पीछे मेरी तरफ देखकर कहा 'तुम्हारे प्रस्ताव को सभी प्रतिनिधि स्वीकारते हैं तथा अगली बैठक

राणकपुर करने का नक्की करते है।" व्यक्ति और उसमें भी खास कर कार्यकर्त्ता के लिये उनकी परख शक्ति अद्वितीय थी।

समय के लिये नियमितता के वे खूब आग्रही थे। पालीताणा प्रतिष्ठा प्रसंग पर मेरी बात-चीत की इच्छा जाहिर करने पर प्रतिष्ठा दिवस पर पहाड ऊपर १० बजे मिलने का मुझे समय दिया। प्रतिष्ठा की धमाल में मै तो समय की बात ही भूल गया। उन्होने समय पर मुझे याद किया। चारो तरफ आदमियों को मुझे खोजने को भेजा। मुझे समाचार मिला तो मैं चौक उठा। तुरन्त भागा। भूल के कारण बहुत शर्माया। बहुत कोमल मधुर मुस्कान से मुझे समय का ध्यान नही रखने के लिये ठपका दिया। वास्तव मे वह ठपका नही आशीर्वाद था। समय की नियमितता नही रखने से आज देश और समाज की कितनी शक्ति व्यर्थ जा रही है।

वे पूर्वागह से कभी ग्रसित नही होते थे। वस्तुः स्थिति की सच्ची जानकारी मिलते ही स्वयं के विचारो को बदलने मे जरा भी विलम्ब व संकोच नही करते थे। जयपुर के देरासर मे भगवान महावीर के जीवन दर्शन के बने हुये भीतीं चित्रों के उद्घाटन के लिये मैने जब शेठ साहब से निवेदन किया, तब वे बोले "मैं जानता हूं तुम लोग कैसे चित्र बनवाते हो? उनमे न कला होती है, न ही रगों का सामजस्य? आडी उभी रेखाये खीची और चित्र तैयार? सुनकर मै तो निराश हो गया। जयपुर पहुंचने पर तीसरे ही दिवस उनका पत्र मिला "तुम्हारा निमंत्रण था, मैं जयपुर आ रहा हूं।" आने पर काफी समय तक इन चित्रो को ध्यान-पूर्वक देखते रहे। मैं तो भयभीत था कि उनकी चित्रों के सम्बन्ध मे क्या प्रतिक्रिया होगी? तब ही मेरे कंधों पर हाथ रखकर बोले "इन ने मेरी धारणा बदल डाली है चित्र खूब सुन्दर व प्रभावशाली बने है।" मैंने विचार किया। बड़े आदमी अपने मुँह से निकली बात को बदलाने मे अपना बड़ा अपमान समझते हैं, पर ये कैसे उदार और खुले मन का मानव है।

करीब १५ वर्ष पहले हम ३५० यात्रियों के साथ सघ के साथ पालीताणा जाते अहमदाबाद ठहरे। तब तमाम यात्रियों के बीच आकर उन्होंने जो उद्बोधन किया वह खूब महत्व का था। उन्होने कहा "तुम्हारे शहर मे भी प्रभु मन्दिर है तो फिर तुम तीर्थो के लिये क्यो घूम रहे हो? तुम्हे तीर्थों मे जाकर केवल भगवान के दर्शन ही नही करना है, पर तीर्थ का इतिहास, स्थापत्य और कला को भी जानना व समझना है, तब ही तुम्हारी यह यात्रा सफल बनेगी। कैसा प्रेरणा-दायक सदेश था यह!

ऐसी सामान्य जैसी घटनाये मनुष्य के उत्थान मे कितनी सहायक वे प्रेरक होती है, यह समझना हरेक कार्यकर्त्ता के लिये बहुत जरुरी है। शेठ कस्तूर भाई के नेतृत्व में आयोजित निर्वाण महोत्सव जैन जगत के इतिहास में चिरस्मणीय बना।

आज उनकी खूब जरुरत थी, तब वे अपने कों छोड़कर चले गये।

From :—

Tribute to ethics/Remembring Kastur Bhai, Lal Bhai, by Gujarat Chamber of Commerce & Industries, Ahmedabad.

श्री हीर विजयजी की स्तुति

संग्रहकर्ता—श्री सौभाग्यचन्द लोढा

1

श्री हीर विजय सूरीश्वर साहिब, तपगच्छ पटधारी उपकारी
वहु जीवन के काज सुधारे, सकट काटे विघन निवारी
सब दुख दूर करने को सतगुरु, तुम हो परचाधारी
दियो प्रतिबोध शाह अकबर कूँ, जीव हिंसा छै मास की टारी
शहर आगरे पाट तुम्हारो, सकल सघ को आनन्दकारी
सेठ के बाग मे देवल गुरु को प्रत्यक्ष दर्श दियो सुखकारी
विक्रम सम्वत् उन्नीस सौ त्रेसठ (१९६३) जेठ शुक्ल पूनम बुधवारी
सेवक चरण कमल को दासा, आशा पूरो आप हमारी

2

मन भ्रम दूर भयो मैं तो भेट्यो जगत गुरुदेव
अर्गलपुर दादावाढी मे बनी समाधि स्तूप
मन्दिर वीर जिनन्द को है, भूगर्भ माही अद्भूत
प्रभु वर्द्धमान का मन्दिर वना है उस पर खूब
जुही, केतकी, चम्पा, मोगरा, गेंदा, गुलाब, सुनूर
वेला और चमेली मौलसिरी, महक रहे भरपूर
प्रभु की अद्भूत मोहनी मूरत मन ना मनोरथपूर
"दुजन साल" करी प्रभु सेवा, पाया सुख भरपूर
दादा हीर सूरीश्वर केरी, चरनन शीश धरू
दुख दोहग सब दूर पलावे, सक्ट देवें चूर
सलावत खा करी थी सेवा, कूब करी थी दूर
रायमल्ल का कुष्ट दूर कर, दी दौलत भरपूर
सघ और शाह सलीम ने पाया प्रत्यक्ष दर्शन हजूर
विहार खोल फरमान लिखा और हिंसा की सब दूर
सम्वत् सौलह सौ सडसठ वर्षे, भई प्रतिष्ठा खूब
विवेक हर्ष सेवक गुरु तेरो, शका की सब दूर

भगवान आदिनाथ द्वारा उपदेशित तत्त्वों का विवेचन

डा० कोकिला जैन

भगवान ऋषभदेव को कैवल्य प्राप्त होने से वे स्वयं कृतकृत्य हो चुके थे। वे चाहते तो एकान्त ध्यान मे अपना शेष जीवन व्यतीत करते, लेकिन वे महापुरुष थे। वे समस्त प्राणियों का हित चाहते थे। सामाजिक समस्याओ का निदान तो पहले ही कर चुके थे। आध्यात्मिकता के बिना जीवन सार्थक नही होता, इसी उद्देश्य से उन्होने प्रवचन दिया। इसी कारण भगवान महावीर जो कि २४ वें एवं अंतिम तीर्थंकर थे, ने अपने प्रवचन में ऋषभदेव को धर्म का मुख[1] कहा है। जैनेतर ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड पुराण में ऋषभदेव को दस प्रकार के धर्म का प्रवर्तक माना है, और भागवतकार[2] ने तो उनका अवतार ही मोक्षमार्ग का उपदेश देने के लिए माना है।

भगवान आदिनाथ कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् सर्वज्ञ कहलाने लगे। तीन लोक एवं तीनों कालों का ज्ञान उन्हें हस्तामलकवत् हो गया। कैवल्य की उपलब्धि के पश्चात् ही उनकी दिव्य-ध्वनि खिरी अर्थात् उनका प्रवचन प्रारम्भ हुआ। सर्वज्ञ होने के उपलक्ष में देवताओं ने तथा मनुष्यों ने उनका ज्ञान–कल्याणक मनाया। तीर्थंकर की प्रवचन सभा को समवशरण कहा जाता है।

इसकी रचना इन्द्र अपने माया बल से करते है। भगवान आदिनाथ का भी समवशरण रचा गया और उनकी दिव्य-ध्वनि से लाभान्वित होने का सभी प्राणियों को अवसर मिला। सम्राट भरत ने समवशरण के मानव श्रोताओ का प्रतिनिधित्व किया। श्रमण श्रोताओं का प्रतिनिधित्व उनके प्रथम गणधर ऋषभसेन ने किया।

सर्वप्रथम भरत ने आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का स्तवन किया। स्तवन करने के पश्चात् सम्राट भरत ने तत्वों को जानने की इच्छा प्रकट की जिससे वे तथा अन्य श्रोता अपने जीवन का विकास कर सके। भगवान आदिनाथ ने तत्वों का स्वरुप प्रतिपादन करते हुए कहा–जीवादि पदार्थ ही यथार्थतः तत्त्व कहलाते है। ये तत्त्व ही सम्यग्ज्ञान का अंग है, और तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान जीवों की मुक्ति का कारण बनता है। यह सामान्य रूप से एक प्रकार का है तथा जीव एवं अजीव के भेद से नौ प्रकार का तथा जीवो के संसारी और मुक्त दो भेद करने से यह तीन भेद वाला कहा जाता है।

छह द्रव्य

१. उत्तराध्ययन सूत्र १६/२५
२. भागवत ११/२/१६/७११

जीव द्रव्य —जिस द्रव्य मे चेतना अर्थात् दर्शन और ज्ञान की शक्ति पायी जाय उसे द्रव्य कहते हैं। वह अनादि निधन है अर्थात् द्रव्य दृष्टि की अपेक्षा से न तो वह कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी नष्ट होगा। इसके अतिरिक्त वह ज्ञान एव दर्शनोपयोग सहित है अर्थात् ज्ञाता एव दृष्टा है। व्यवहार दृष्टि से वह स्वय कर्त्ता है और स्वय भोक्ता है। अर्थात् वह स्वय कर्मो का करने वाला है और कृत कर्मो का फल स्वय भोगता है। उसका आकार शरीर के प्रमाण बराबर है। वह दीपक के प्रकाश की तरह सकोच एव विस्तार रूप परिणामन करने वाला है, अर्थात् नाम कर्म के उदय से उसे जितना छोटा एव बडा शरीर प्राप्त होता है वह उतने ही परिमाण मे सकोच और विस्तार को पा लेता है। उन्होंने कहा कि जिसमे न कोई रस है न कोई रूप है और न ही किसी प्रकार की गध है अतएव जो अव्यक्त है, शब्द रूप भी नही है किसी भौतिक चिह्न से भी नही जाना जा सकता जिसका न कोई निर्दिष्ट आकार ही है उस चैतन्य गुण विशिष्ट द्रव्य को जीव कहते हैं। प्रत्येक जीव अपने उत्थान व पतन के लिये स्वय ही उत्तरदायी है। वह अपने ही कार्यों से जगत के जाल मे फसता है और अपने ही कर्मो से उसे बन्धन से मुक्ति मिलती है। अन्य कोई न उसे बाधता है और न बन्धन से मुक्त करता है। यदि उसमे बनने की क्षमता है तो याचक से भगवान बनने की भी क्षमता उसी मे है। अत जीव को ईश्वर कहा जाता है। यह आत्मा स्वय कर्त्ता एव स्वय भोक्ता है। यदि आत्मा सुख दुख का भोक्ता न हो तो सुख दुख की अनुभूति उसे नही होती क्योंकि अनुभूति चेतना का धर्म है। भगवान् ऋषभदेव ने जीव को शरीर प्रमाण बतलाया जैसे दीपक छोटे या बडे जिस स्थान पर रखा जाता है, उसका प्रकाश उसके अनुसार ही या तो सिकुड जाता है या बढ जाता है। वैसे ही आत्मा भी प्राप्त हुये छोटे बडे शरीर के आकार का हो जाता है। सकोच होने पर आत्मा के प्रदेशो की हानि नहीं होती है और विस्तार होने पर प्रदेशो की वृद्धि नही होती।

भगवान् ने कहा है, कि प्रत्येक ससारी आत्मा कर्मो से बधी हुई है और यह बन्धन अनादि काल से चला आ रहा है। नये कर्म आते हैं और पुराने झड जाते हैं। इस प्रकार यह जीवन जानने, देखने वाला, अमूर्तिक कर्त्ता, भोक्ता, शरीर परिमाण वाला और अपने उत्थान पतन के लिये स्वय उत्तरदायी है। पाच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये दस प्राण इस जीव के विद्यमान रहते हैं। करता है इसलिए 'जन्तु' कहलाता है। यह जीव नर नारक आदि पर्यायो मे निरन्तर गमन करता रहता है इसलिए 'आत्मा' कहलाता है। यह जीव नित्य है। परन्तु उसकी नर-नारकादि पर्यायो की अपेक्षा उसमे उत्थान व विनाश होता रहता है। उसी प्रकार यह जीव नित्य है। परन्तु पर्यायो की अपेक्षा उसमे भी उत्पाद और विनाश होता है। द्रव्यत्व सामान्य की अपेक्षा जीवद्रव्य नित्य है और पर्यायों की अपेक्षा अनित्य है। एक साथ दोनो अपेक्षाओ से वह जीव उत्पाद व्यय और और ध्रौव्य रूप हैं। इस जीव की दो अवस्थायें मानी जाती हैं। एक ससारी और दूसरी मुक्त। नरक, तियच मनुष्य और देव—इन चार गतियो के भवर मे परिभ्रमण करना ही ससार कहलाता है और समस्त कर्मो का बिल्कुल ही क्षय हो जाना मोक्ष कहलाता है। मोक्ष अनन्त सुख स्वरूप है और सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूप साधन से प्राप्त होना है। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और समीचीन पदार्थों का शका रहित श्रद्धान् करना सम्यक् दर्शन, कहलाता है। यह सम्यक् दर्शन मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन है। वह सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र ये तीनो मिलकर ही मोक्ष के कारण कहे गये हैं। यदि इनमे से एक का भी अभाव हुआ तो मोक्ष प्राप्त नही हो सकता।

अजीव द्रव्यः—भगवान ऋषभदेव ने जीव द्रव्य का वर्णन करने के पश्चात् अजीव द्रव्य का वर्णन किया। जिन द्रव्यो मे चैतन्य नही पाया जाता वे अजीव द्रव्य कहलाते है। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस प्रकार अजीव द्रव्य के पाँच भेद है।

पुद्गलः—हम जो कुछ देखते है, छूते है, सूंघते है, खाते और सुनते है—ये सब पुद्गल द्रव्य है। पुद्गल रूप, रस, गध और स्पर्श वाला होता है। उसमे ये चारों (रूप, रस, गध, स्पर्श) गुण पाये जाते है, इसी कारण से वह मूर्तिक कहा जाता है। पुद्गल के दो भेद है—एक परमाणु और दूसरा स्कन्ध। पुद्गल के सबसे छोटे टुकड़े को परमाणु कहते है। यह परमाणु नित्य है, एक प्रदेशी है, अविभागी है और मूर्तिक है। परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते है, वे इन्द्रियो से नही जाने जाते। घट पट आदि परमाणुओ के कार्य है उन्ही से उनका अनुमान किया जाता है। उनके कोई भी दो अविरुद्ध स्पर्श रहते है, एक वर्ण एक गन्ध और एक रस रहता है। ये परमाणु गोल और नित्य होते है तथा पर्यायो की अपेक्षा अनित्य भी होते है। पुद्गल द्रव्य के छह भेद है—१. सूक्ष्म २, सूक्ष्म -सूक्ष्म, ३. सूक्ष्म-स्थूल, ४. स्थूल-सूक्ष्म ५. स्थूल ६. स्थूल-स्थूल। इनमें से एक अर्थात् स्कन्ध से अलग रहने वाला परमाणु सूक्ष्मसूक्ष्म हैं। क्योंकि वह देखा नही जा सकता है। कर्मो के स्कन्ध सूक्ष्म कहलाते हैं क्योंकि ये अनन्त प्रदेशो के समुदाय रूप होते है। शब्द, स्पर्श, रस और गन्ध सूक्ष्म स्थूल कहलाते है क्योकि यद्यपि इनका चक्षु इन्द्रिय से ज्ञान नहीं होता इसलिए ये सूक्ष्म है परन्तु अपनी-अपनी कर्ण आदि इन्द्रियो के द्वारा इनका ग्रहण हो जाता है, इसलिए ये स्थूल भी कहलाते हैं। छाया, चांदनी और धूप आदि स्थूल सूक्ष्म कहलाते है, क्योंकि चक्षु इन्द्रिय से दिखाई देने के कारण ये स्थूल हैं, इनके रूप का संहरण नही हो सकता इसलिए सूक्ष्म भी है। पानी आदि तरल पदार्थ जो कि पृथक करने पर भी मिल जाते हैं स्थूल भेद के उदाहरण है। पृथ्वी आदि स्कन्ध जो कि भेद किये जाने पर फिर न मिल सके स्थूल स्थूल कहलाते है। भगवान ऋषभदेव ने पुद्गल द्रव्य की विस्तृत व्याख्या करते हुए शब्द को पुद्गल द्रव्य माना। शब्द स्कन्ध से उत्पन्न होता है, अर्थात् स्पर्शो के परस्पर टकराने से शब्दों की उत्पत्ति होती है। शब्द मूर्तिक है। वह टकराता भी है। वह गतिमान है। इस प्रकार इन्द्रियो के द्वारा हम जो कुछ देखते हैं, सूंघते है, सुनते है, छूते है वे सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें है।

धर्म द्रव्यः—धर्म द्रव्य का अर्थ पुण्य से नही है, किन्तु यह भी जीव और पुद्गल की तरह स्वतन्त्र द्रव्य है। जो जीव और पुद्गल द्रव्यों को चलाने मे सहायक है वह धर्म द्रव्य है। यद्यपि चलने की शक्ति तो जीव, पुद्गल मे ही हैं किन्तु धर्म द्रव्य की सहायता के बिना उस की अभिव्यक्ति नही हो सकती। धर्म द्रव्य में न रूप है न रस है न गन्ध है न स्पर्श है और न शब्द रूप ही है। वह समस्त लोक मे व्याप्त है, अखण्डित है और असंख्यात प्रदेशी है। जैसे इस लोक में जल मछलियों को चलने में सहायक है वैसे ही धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों को चलने मे सहायक होता है। लेकिन सहायक होने पर भी धर्म द्रव्य प्रेरक कारण नहीं है अर्थात् किसी को बलात् नही चलाते है किन्तु चलते हुए को चलने में सहायता करते है।

अधर्म द्रव्य :—अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायक होता हैं। इसमें ना रूप है, न रस है, न गन्ध है, न स्पर्श है और न शब्द न रूप ही है। धर्म द्रव्य के समान यह भी समस्त लोक में व्याप्त है। अखण्डित है और असंख्यात प्रदेशी है। जिस प्रकार वृक्ष की छाया स्वयं ठहरने

की इच्छा करने वाले पुरुष को ठहरा देती है उसमे ठहरने मे सहायता करती है, परन्तु वह स्वय उस पुरुष को प्रेरित नही करती फिर भी वह उस पुरुष के ठहरने का कारण कहलाती है। उसी प्रकार अधर्मास्तिकाय भी उदासीन होकर जीव और पुद्गल को स्थित करने मे निमित्त है। उन्हे ठहरने मे सहायता पहुचाता है, परन्तु स्वय ठहरने की प्रेरणा नही करता।

आकाश द्रव्य—जो सभी द्रव्यो को स्थान देता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। आकाश अमूर्तिक है और सर्वव्यापी है। वह क्रियारहित है तथा स्पर्श रहित हैं। आकाश के दो भेद हैं। एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। सर्वव्यापी आकाश के मध्य मे लोकाकाश है और उसके चारो अलोकाकाश है। लोकाकाश मे सभी छह द्रव्य पाये जाते हैं और अलोकाकाश मे केवल आकाश द्रव्य ही पाया जाता है।

काल द्रव्य —जिसका लक्षण वतना है अर्थात् जो वस्तुमात्र के परिवर्तन कराने मे सहायक है, उसे काल द्रव्य कहते हैं। यद्यपि परिणमन करने की शक्ति सभी पदार्थो मे है। किन्तु वाह्य निमित्त के विना उस शक्ति की अभिव्यक्ति नही हो सकती। जैसे कुम्हार के चाक फिरने मे उसके नीचे लगी हुई शिला कारण होती है, वैसे ही ससार के पदाथ भी काल द्रव्य के सहायता विना परिवतन नही कर सकते क्योकि काल-द्रव्य उनके परिवतन मे सहायक होता ह। काल द्रव्य वस्तुओ का जवरन परिवर्तन नही कराता है, किन्तु स्वय परिणमन करते हुये द्रव्यो का सहायक मात्र हो जाता है और स्वय के परिणमन मे स्वय निमित्त हैं।

काल दो प्रकार का होता है —(1) निश्चित काल, तथा (2) व्यवहार काल। लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर अलग-अलग कालाणु स्थित हैं। उन कालाणुओ को निश्चित काल कहते है। उन कालाणुओ के निमित्ति से ही ससार मे प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। उन्ही के निमित्त से प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व कायम हैं। आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर पहुँचाता हैं उसे 'समय' कहते है। यह समय काल द्रव्य की पर्याय है। इन समयो के समूह को ही अवलि-उच्छवास प्राण, स्तोक, घटिका, दिन-रात आदि कहा जाता है। यही व्यवहार काल है। व्यवहार काल और मण्डल की गति व घडी वगैरह के द्वारा जाना जाता है। इनके द्वारा ही निश्चय काल अर्थात काल द्रव्य के अस्तित्व का अनुमान किया जाता है। जैसे किसी वच्चे मे शेर का व्यवहार करने से यह वच्चा शेर है, शेर नाम के पशु के होने का निश्चिय किया जाता है। वैसे ही सूय आदि की गति मे जो काल का व्यवहार किया जाता है, वह औपचारिक है। यह काल द्रव्य 'अकाय' अर्थात् अप्रदेशी कहलाता हैं। काल को जोडकर शेष पाच द्रव्यो के प्रदेश एक दूसरे से मिले हुए रहते हैं, इसलिए वे अस्तिकाय कहलाते है। काल द्रव्य एक प्रदेशी होने से अनस्तिकाय कहलाता है।

इस प्रकार भगवान आदिनाथ द्वारा उपदेशित जीवन मूल्य आज भी उतने ही समीचीन हैं जितने उनके समय मे थे। मानव मात्र उन सिद्धान्तो पर चलकर अपने जीवन का लौकिक एव पारलौकिक विकास कर सकता है।

परमात्मा की वाणी–अमृत संजीवनी

लेखक—मुनि श्री धर्मधुरन्धर विजय जी महाराज

अनुवादक—श्री नरेन्द्र कोचर, जयपुर

परमात्मा की वाणी तीर्थ है। तीर्थ वह है जिससे भवसागर पार किया जाता है। परमात्मा की वाणी पीयूष तुल्य है। अजर अमर बनाने वाली यह अनुपम अमृत संजीवनी औषधि है। जो इस वाणी का भावपूर्ण श्रवण कर लेता है उसका बेड़ा पार हो जाता है, उसके जन्म जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं। वह सुपथगामी बन जाता है। ऐसा है प्रभु वाणी का महा-प्रताप। पापों के भयंकर भूधरो को तोड़ने मे प्रभु वाणी वज्रतुल्य है, अनेक पापी भी श्री जिनेश्वर वाणी के प्रताप से तरे है और तरेंगे, परन्तु उस वाणी को श्रद्धापूर्वक श्रवण करने वाला ही भव सागर को पार कर लेता है। आवश्यकता है प्रभु वाणी पीयूष को हृदय में रमाने की, जिसके हृदय में प्रभु वाणी का अमृत रम जाता है, वह अनंत सुख में क्रीड़ा करता है।

प्रभु वाणी को सुनकर अनन्त लब्धि निधान गणधर गौतम स्वामी तरे, अनेक आचाय, मुनिराज तरे, अनेक पापी तर गये! परमात्मा की वाणी आत्म प्रदेश के घनघोर अधकार को दूर कर देती है, और आत्मा को शाश्वत प्रकाश से प्रकाशित कर देती है। शाश्वत प्रकाश अर्थात् पूर्ण आनन्द की प्राप्ति।

श्री कृष्ण की वासुरी की मीठी तान का वर्णन अनेक कवियों ने, भक्तो ने और ज्ञानियो ने किया है। श्री कृष्ण अपनी बासुरी लेकर वन मे पहुंचे, बांसुरी बजाई। जादू हो गया? जो उपवन सूख गया था, जिन पेडो पर अनेक वर्षों से पत्ते नही आये थे, जो वृक्ष केवल सूखी लकड़ी के समान खडे थे, वे सब देखते ही देखते हरे–भरे हो गये, पेड़ों पर फूल खिल गये, फल से डालियां झूमने लगी। सूखी नदियां अत्यन्त आनन्द में बहने लगी। मयूर नृत्य करने लगे! कोकिला मधुर तान से गाने लगी, यह श्री कृष्ण की वासुरी का प्रभाव था। माली की पत्नि ने देखा कि उसका सूखा बाग श्री कृष्ण की बांसुरी के प्रभाव से हरा-भरा हो गया। वह आनन्द से झूमने लगी, उसके आनन्द व आश्चर्य का पारावार न रहा। उपवन का माली जब संध्या समय घर लौटा और अपने उजड़े बाग को हरा भरा देखा तो उसे भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपनी पत्नि से पूछा—यह क्या चमत्कार है?

यह वीरान और उजड़ा बाग आज हरा-भरा कैसे हो गया। तब उसकी पत्नि बोली :—श्रीकृष्ण ने यहा आकर बांसुरी बजाई थी, संगीत के माधुर्य से समस्त बाग हरा हो गया है! माली के कौतूहल की सीमा न रही! वह भागकर श्रीकृष्ण के राज-

महल मे पहुचा, क्योकि उस समय तक श्री कृष्ण अपनी गौमण्डली और सखामण्डली सहित घर लौट गये थे। श्रीकृष्ण ने माली से कहा—इस बासुरी को मैंने बजाया था, फलस्वरुप देखते देखते ही तुम्हारा बगीचा हरा-भरा हो गया है। माली ने आश्चर्य से बासुरी को निहारा, परन्तु उसमे कोई विशेषता दिखाई नही दी! बासुरी काली, कलूटी, निर्जीव थी। यह तो श्री कृष्ण के मधुर-स्वर का प्रभाव था कि बाग हरा भरा हो गया, प्रत्येक पेड-पौधे ने उस स्वर मे अपने को रमा दिया था, धरती का कण-कण उस स्वर को छूकर पुलकित हो गया था, प्राणवान् हो गया था! परन्तु बासुरी! वाह रे तेरे गीत तूने श्रीकृष्ण के स्वर को अपने मे भरकर फिर उसे बाहर छोड दिया था! बासुरी तो खाली की खाली रह गई।

हमारी दशा भी बासुरी के समान है! हम प्रभु वाणी को गुरु मुख से सन्त जनो से रोज सुन तो लेते हैं, परन्तु उस वाणी को बासुरी के समान बाहर निकाल देते हैं।

आवश्यकता है प्रभु वाणी को मन मे रमाने की! भक्तजनो ने उस वाणी को अपनी आत्मा मे रमाया है, इसलिये वे महान् बने हैं।

परमात्मा के प्रवचन पाप पुण्य का बोध कराते है। प्रभु वाणी के प्रभाव से मनुष्य क्या पशु-पक्षी भी सन्तपथगामी बन जाते हैं। प्रभुवाणी प्रेम की मधुरिमा है जो प्राणीमात्र के प्रति प्रेम और मैत्री की भावना जाग्रत करती है। मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थ भाव से परिपूर्ण परमात्मा की वाणी हृदय-कमल को खिला देती है। हृदय कमल पर प्रभु का सिंहासन है।

प्रभु की वाणी धर्म के प्रति अनुराग उत्पन्न करती है। जिसके हृदय मे प्रभुवाणी का अमृत प्रवाहित हो गया, समझो उसका जन्म सफल हो गया! आनन्द, कामदेव जैसे श्रावक रत्नो ने उस पीयूष वाणी का स्वाद चखा था, इसीलिए वे धन्य हो गयें। हमे भी प्रभुवाणी के पीयूष से हृदय को पवित्र करना है। प्रभु की सच्ची पूजा है—प्रति पत्ति पूजा अर्थात् प्रभु वाणी मे आत्म रमणता।

प्रभु वाणी की महिमा की अजितशाति मे यह प्रशस्ति है —

जइ इच्छह परमपय, अहवा कित्ति सुविच्थड भुवण,
ता तेलुक्कुद्धरणे जिणवयणे आयर कुणह॥

भावार्थ — "यदि परमपद को या अति विशाल कीर्ति को चाहते हो तो तीनो लोकों के उद्धार करने वाले जिन वचन के प्रति आदर श्रद्धा प्रेम रखो।"

卐 卐 卐

नम्रता, प्रेमपूर्ण व्यवहार तथा सहनशीलता से मनुष्य तो क्या देवता भी वश मे हो जाते हैं।

बाल गगाधर तिलक

दो अनुवाद

अनुवादक – श्री हीराचन्द वैद, जयपुर

आराधना का महत्व :

(ले० पू० आ० देव श्रीमद् श्री विजय किर्चिन्दसुरीश्वरजी म० सा०)

त्रिकाल वाधित अविच्छिन्न प्रभावशाली श्री जैन शासन मे अनेक प्रकार की आराधनाओ का वर्णन किया गया है। आराधना के असंख्य प्रकार के योग मे से किसी एक भी योग की अवगणना किये वगैर साधक को जिस मे अधिक रस प्राप्त हो, जिससे अधिक उल्लास व भाव जागृत हो ऐसे मात्र एक योग की एक ही प्रकार की आराधना में यदि अनन्यमन एवं परम श्रद्धा पूर्वक पवित्र भाव से तन्मय बने तो वेडा पार हो जावे इसमे संदेह ही नही। पर शर्त यह है कि इस आराधना में जरा भी विराधना की गंध भी न आवे। साथ ही आराधना निष्काम भाव से की गई तो कारण आराधना अमृत है जबकि विराधना विष है, अरे हलाहल विष है। यह विराधना रूप विष अपने आराधना रूप अमृत को जहर में बदल देता है। ऐसा न हो कि "अंधी दले और कुल्हडी में कुछ न मिले" कारण की दली हुई वस्तु को तो कुत्ते आदि स्वाहा कर जाते है, वेचारी अंधी को तो कुछ मालूम ही नहीं पड़ता।

एक तरफ आराधना करते रहे और दूसरी तरफ जाने अनजाने विराधना करते रहें तो हमारी दशा भी उस अंधी जैसी ही होने वाली है।

साधु की पगाम सज्झाय "अब्भुट्ठिओमी आराहणाए विरओमीविराहणाऐ" आराधना करने को मैं तत्पर हुआ हूं और विराधना से विमुख होता हूं ऐसे वचन आते हैं। पाक्षिक सूत्र मे भी "ते मंगल करिता अहमवि आराहणाभि मुहो" महापुरुषों हमारा मगल करो। कारण मैं आराधना करने को तत्पर बना हू, वे वचन बोले जाते है। जिन शासन मे आराधना की महत्ता और विराधना का महातम् दरसाया गया है। परदेशी राजा आराधना कर सूर्याभ विमान के मालिक सूर्याभ देव बनते है। ये सूर्याभ देव भगवान महावीर स्वामी से पूछते है 'भन्ते ! मै आराधक हूं या विराधक ? यह प्रश्न उपरोक्त वात की पुष्टि करता है। कारण आराधक आत्मा शीघ्र अपना कल्याण कर लेती है।

दूसरी वात यह है कि आराधना निष्काम होनी चाहिये। इस लोक या परलोक में भौतिक सुखों की आकांक्षा और अभिलाषा के लिये की गई आराधना में किये गये शुभ अनुष्ठान भी विषयानुष्ठान और गदलानुष्ठान की श्रेणि में आ जाते है। इनको हेय ही गिना जाता है। इसलिये रहस्य को समझे वगैर गतानुगति से की गई आराधना को भी अनुष्ठान तरीके हेय गिना गया है। आराधना में प्राण फूंकना हो तो शास्त्र में उल्लिखित एवं अमृतानुष्ठान के जो लक्षण बताये गये है उस मूजब आराधना करने में आवे तो मुक्ति अधिक दूर नही है।

दान धर्म, शील धर्म, तप धम और भावधर्म रूप चतुर्विध आराधना कर अनन्त आत्मायें चतुर्गति का अंत कर पचम गति मोक्ष को प्राप्त हो चुकी है।

ग्वाल का जीव दान धम की आराधना कर अगले भव मे शालिभद्र बना और पुन्यानुबधी पुन्य से अढलक ऋद्धि-समृद्धि पाकर भी उसमें आसक्त न होकर ससार से विरल बन त्याग धर्म की अनुपम आराधना कर स्वाथ सिद्ध विमान मे जन्म पाया, जहा से वह मानव भव प्राप्त कर मुक्तिधाम प्राप्त करेगा।

शील धर्म की आराधना करने वाले महापुरुषो एव महासतियो के असख्यात उदाहरण जैन इतिहास के सुनहरी पृष्ठो पर अंकित है। सुदर्शन शेठ, विजय शेठ और विजया शेठाणी जैसे नर रत्न इस धम की आराधना से विख्यात बने, इतना ही नही पर केवल लक्ष्मी को वर कर भय समुद्र से तर गये।

तप धम की आराधना करने वाले महापुरुषो के ज्वलत उदाहरण अब भी प्रदान कर रहे हैं। भगवान महावीर की आत्मा ने नन्दनमुनि के भव मे एक लाख वर्ष के दीर्घ चारित्र पर्याय मे ११८०६४५ मास क्षमण किये थे। सारे जीवन भर मास क्षमण के पारणें मास क्षमण कर "सवि जीव करू शासन रसी" ऐसी उदात्त भावना भाकर श्री तीर्थंकर नाम कर्म जैसी महान पुण्य प्रकृति की निकाचना की थी। इसके प्रताप से २७ वें भव मे भगवान महावीर बने और विश्व के उद्धार के लिये ज्ञान का अपूर्व प्रकाश देकर जगत के जीवो पर असीम, अजोड और असाधारण उपकार कर कृतकृत्य बने। भाव धम की आराधना करके इलायची कुमार वाम पर नृत्य करते करते सामान्य निमित्त मिलते ही भावना भाव भाते ही केवल-ज्ञान पा गये।

खरगोश जसे क्षुद्र प्राणी पर हाथी जैसे जानवर द्वारा करुणा दरसाने जसे दया धम की आराधना के प्रताप से हाथी राजा श्रेणिक का पुत्र मेघ कुमार के रूप मे जन्म प्राप्त करता है और भगवान महावीर के वचनामृत का पान कर त्याग के पुनित पथ पर प्रयाण कर सिद्ध पद को प्राप्त करता है।

ध्यान और समता के योग से अगणित पुन्यात्मायें क्षपक श्रेणि को प्राप्त कर घाती कर्म का नाश कर केवल ज्ञान और केवल दर्शन पाकर अत मे परम पद को प्राप्त करते हैं। भगवान महावीर स्वामी की परम आस्थापूर्वक अनन्य मन से उपासन-भक्ति करने वाले महाराजा श्रेणिक आने वाली चौवीशी मे प्रथम पद का नाम तीर्थंकर के रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे।

आहार सज्ञा, भय सज्ञा, मैथुन सज्ञा और परिग्रह सज्ञा के नाश के लिये दान, शील, तप और भाव धम की आराधना करनी है। ससारी आत्मा को अनादि काल से आहार की भूख, विषय की भूख और धन की भूख लगी है "यह टले तो ही मुक्ति मिले"

आराधना की वृद्धि से, कर्म निर्जरा की वृद्धि से इच्छापूर्वक की हुई दान, शील, तप और भाव धर्म की आराधना ही आत्मा को मुक्त कर सकती है। वैसे तो अनुत्तर विमान के देवो को तेवीस हजार वर्षों मे भूख लगती है इससे उन्हे तेवीस हजार वर्ष के उपवास का लाभ मिलता नही। कारण उनमें कम निर्जरा की वृद्धि नही। मनुष्य उगाही करने जावे और भूखा रहना पडे तो उस काल का उसका भूखा रहना क्या तप मे गिना जावेगा। इसकी गिनती तो लघन मे ही आवेगी। उत्थान, कर्म, बल, उत्साह और विघ्नजय, भगवान द्वारा प्ररुपित इन पाच सिद्धान्तो को जीवन में उतार कर "देह पातयामि काथ साधयामि" इस सूत्र को नजर समक्ष रख कर जो जिनेश्वर देव द्वारा वतलाई गई आराधना साधना म तन्मय बनेगा वह अवश्य ससार समुद्र तर जावेगा। सिद्ध, बुद्ध बनकर मुक्त हो जायेगा।

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

नीचे रहने का ईनाम

लेखक :— मुनि श्री रत्नसुन्दर विजयजी म० सा०

("चेतन अब चलो संग हमारे" से उद्धृत।)

समुद्र किनारे जाने का प्रसंग आया। ज्वार का समय था। लहरें उछल २ कर किनारे के पास रहे हुए काले बड़े पत्थरों के पास टकरा टकरा कर वापिस जा रही थी। इन लहरों पर सवार होकर किनारे की तरफ आती हुई नावे साफ दिखती बंद हो गई थी।

थोडा आगे गया तो एक आश्चर्यकारी दृश्य देखने मे आया। अलग अलग जगह से नदियाँ आकर सागर मे मिल रही थी और सागर तो नीचे था।

मैने सागर से पूछा, भाई! यह क्या? सैकड़ो नदियों को तू तेरे में समाता है फिर भी तूं इन सब नदियों से नीचे, ये सब नदियां ऊपर! ऐसा क्यों?

तो सुन, नदियाँ तो क्या? मेरे से तो गटर भी ऊँचे है और इसमे भी मुझे खूब आनन्द है। नदियों और गटरों का पानी भी मै मेरे में समा लेता हूं। इसका कारण यह है कि मै नीच हूं और वे सब ऊपर है! यदि मै ऊपर होता तो ये सारी नदियां मेरे मे किस तरह समा सकती?

सागर की यह बात सुनकर मै तो स्तब्ध रह गया! गम्भीर गिने जाने वाले सागर ने कितनी गम्भीर बात कह दी?

दूसरे को अपने मे समा लेना होवे तो अपने को नीचे ही रहना चाहिये। जीवमात्र के साथ में भी जमाने का अद्भुत रहस्य सागर के इस दृष्टांत मे अपने को मिलता है?

'दूसरों से मैं ऊँचा रहू' यह वृति ही दुश्मनी को पैदा करती है जब कि "मेरे से मैं दूसरों को ऊंचा रहने देऊं" यह वृत्ति अटूट मैत्री को प्राप्त कराने वाली होती है।

ऋषभदेव भगवान के चरम शरीरी ऐसे दो पुत्रों भरत व बाहुबली के बीच खेले गये युद्ध की मूल में क्या था? यही न? भरत कहता तू मेरी आज्ञा में आ जा? बाहुबली कहता निर्णय मैदान में कर लूंगा?

रावण और बाली के बीच खेले गये युद्ध,
कौरव और पाडवो के बीच खेले गये जंग,
रावण और विभिषण के बीच खेले गये जंग,

इन सब के मूल मे बस एक ही ज्ञान केन्द्र स्थान मे रही हुई थी कि "मैं बडा मेरी बात बडी।"

बहुत कठिन है इस भयानक मान्यता को तोड डालना। 'बडा बनने के लिये नीचे के स्थान पर रहना पडे।" इस मान्यता को स्वीकार कर लेना बडा कठिन है। और इस मान्यता को स्वीकार किये बिना वास्तविक रूप मे बडप्पन प्राप्त हो जावे यह असम्भव है?

सागर गम्भीर है, विशाल है, मर्यादाशील है, रत्नाकर है, इसको मिले हुये इन विशेषणो के पीछे सबसे बडा रहस्य मुझे तो यही दिखा कि स्वय मे प्रवेश करती दुर्गन्ध मारती गटर को भी व स्वय करते उच्च स्थान पर रखने को तैयार है?

महा पुरुषो का जीवन भी इसी तरह का होना है। स्वय ऊँचे आने के बदले अन्यो को ऊँचा रखने मे उनका अधिक विश्वास है और इसी मान्यता के कारण वे दुश्मनो और विरोधियो के दिल मे भी अपना अद्भुत स्थान बना लेते हैं।

एक बार इस सुनहरी मान्यता को जीवन मे असली रूप देने का प्रयत्न करने जैसा है?

लोहे के थम को काट देने की क्षमता रखने वाली करातें मुलायम रुई को काट नही सकती? पर्वतो को चूर-चूर कर देने की ताकत रखने वाली नदी छोटे पेड को नमा नहीं सकती? इस सनातन सत्य को कभी भूलो नही। वीर प्रभु, भाभरीया अनगार मेतारज मुनि, सुकोशल मुनि, गज मुकुमाल, खधक सूरि इन सब महान आत्माओ के जीवन को नजर के सामने रखो।

वीर प्रभु ने गोशालक को तेजोलेश्या छोडने की छूट दी। ग्वालियो को कान मे कीले ठोकने की। सगम को कालचक्र फेंकने की। कटपूतना व्यतरी को शीत उपसर्ग करने की। शूलपाणी यक्ष को घोर उपसर्ग करने की? चडकौशीया को डक मारने की।

मेतारज मुनि ने थोडा सा भी प्रतिकार किये बगैर सोनी को अपने मस्तक पर बाधकर पीटने की छूट दी।

स्वय के शरीर को चबा कर खा जाने के लिये आने वाली बाघण को सुकोशल मुनि ने रोकने का थोडा भी प्रयत्न नही किया।

सयम जीवन के प्रथम दिन ही महामुनि गज सुकुमाल के मस्तक पर धधकते अगारे भरी सिगडी बनाने वाले सोमिल ससुर को जरा भी न रोका।

जीवता चमडी उतारने आये हुए हत्यारा का खधक मुनि ने प्रेम से बधाया।

क्या इन महान पराक्रमी आत्माओ मे प्रतिकार करने की ताकत नही थी? थी, थी, और प्रचण्ड शक्ति थी। इतने पर भी सहन किया समता रखी तो इनाम मे मिला केवल ज्ञान।

मात्र अध्यात्मिक जगत मे ही नहीं, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो के साथ बाधे सम्बन्ध मे मैत्री भाव को जीवित व जागृत रखना है तो तुम्हारे को नीचे रहना ही ठीक है।

नीचे रहो, दुनिया की कोई ताकत तुम्हे नमा सकती नही। जगत के जीव मात्र को अपने मे समा लेना होवे तो सागर की जैसे अपने को भी कह देना है कि "हे जीवो। तुम सदा मेरे से ऊपर रहो। तुम्हारे दुर्गुणों को भी झेलने को मैं तैयार हू। बस फिर मैत्री अपने हाथ है।

★★★★

मार्गानुसारी के गुण

श्री राजमल सिंघी

जैन शास्त्रों के अनुसार श्रावक अथवा श्राविका के पालने योग्य धर्म दो प्रकार के होते है। पहिला सामान्य श्रावक धर्म और दूसरा विशेप श्रावक धर्म। मार्गानुसारी के ३५ गुणों का पालन करना सामान्य श्रावक धर्म है और श्रावक के १२ व्रतो का पालन करना विशेप श्रावक धर्म है। ज्ञानियो द्वारा प्रदर्शित मार्गानुसारी के गुण अपनाने से मोक्ष मार्ग में चलने की शक्ति प्राप्त होती है। जय वीयराय सूत्र मे भी चैत्यवंदन करते समय भगवान को प्रार्थना की जाती है कि :–

जय वीयराय, जगगुरु, होउ ममं तुअ पभावओं भयवं।
भव निव्वेओ मग्गाणुसारिआ इट्ठफल सिद्धि॥

अर्थात, हे वीतराग प्रभो, हे जगतगुरो, आपकी, जय हो। हे भगवान, आपके प्रभाव से मुझे संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो, मोक्ष मार्ग में चलने की शक्ति प्राप्त हो और इष्ट फल की सिद्धि हो जिससे मैं धर्म का आराधन सरलता से कर सकूँ।

मार्गानुसारी के ३५ गुण निम्न प्रकार हैं :—

१. न्याय से धन प्राप्त करना

सदाचार से उत्पन्न किया हुआ धन न्याय से उत्पन्न धन होता है और स्वामी द्रोह, मित्र द्रोह, ठगी, चोरी इत्यादि निदनीय कार्यो द्वारा उत्पन्न धन अन्याय से उत्पन्न धन होता है। न्याय से उत्पन्न धन सुखकारी और अन्याय से उत्पन्न धन दुखकारी है। अन्याय से प्राप्त किए हुए धन से इस लोक मे अपमान एवम् राजदण्ड प्राप्त होता है और पर भव में नरक की प्राप्ति होती है। अनीति से प्राप्त धन मनुष्य की सद्बुद्धि का नाश करके अधर्म की ओर ले जाता है। हा, यदि प्रबल पुण्य का उदय हो तो इस लोक मे वह अपमान अथवा राजदण्ड से बच सकता है किन्तु अन्य भवों मे तो उसको अन्याय से उत्पन्न धन का बदला उठाना ही पड़ेगा।

२. उत्तम पुरुषों के आचरण की प्रशंसा करना—

(शिष्टाचार)—गुणी जनों के गुणों की प्रशंसा करने से हम वही गुण प्राप्त करते हैं। अनाथो एवं दीनहीनों का उद्धार करना, कष्ट के समय मे स्थिर चित्त से रहना, महापुरुषों के कार्यो का अनुकरण करना, न्याय-युक्त वृत्ति को प्रिय समझना, प्राण का नाश होता हो तो भी अकार्य नहीं करना, यह शिष्टाचार, सदाचार है।

३ समान कुल और शील वाले किन्तु अन्य गोत्री के साथ विवाह करना–

समान कुल, अर्थात ब्राह्मण को ब्राह्मण के साथ क्षत्रिय को क्षत्रिय के साथ, वैश्य को वैश्य के साथ और क्षुद्र को क्षूद्र क साथ विवाह करना चाहिए। शील से यहा अर्थ है मद्य, मास, रात्रि भोजन इत्यादि का त्याग। यदि समान कुल और शील होता है तो स्त्री-पुरुष की धर्म साधना मे अनुकूलता होती है और कुल और शील समान न हो तो हमेशा झगडा होने की सभावना होती है। शील मे भी असमानता हो तो धर्म कार्य मे बाधा पडती है। समान लक्ष्मी, भाषा, पहनावा और खान पान वाला के साथ ही व्याह करना चाहिए, वरना हमेशा झगडा होता रहेगा। स्त्री की रक्षा के लिए चार बातो का अवश्य ध्यान रखना चाहिए (१) समस्त गृह व्यवहार स्त्री के ऊपर छोडना (२) स्त्री को द्रव्य प्रमाण से सौंपना (३) स्त्री को आवश्यकता से अधिक स्वत त्रता नही देना (४) पुरुष को अन्य स्त्री को बहिन-माता के भाव से देखना। स्त्रियो को भी ध्यान रखना चाहिए कि वे अकेली कही नही जावें, अधिक जागरण न करें, माता के घर ज्यादा न रह, नौकरानी के साथ सबध न रखें तथा पान, अति शृ गार, काम क्रीडा, सुगन्ध की इच्छा, लज्जाहीन वेष, हास्य, अधिक सोना, और रात्रि मे घर से बाहर जाना, इत्यादि का त्याग करे और पर पुरुष के साथ अकेली न रहे।

४ पाप से डरना––

चोरी परदारागमन, जुआ खेलना इत्यादि पाप कर्म से दूर रहना चाहिए। मद्य मासादि अपेय, अभक्ष्य पदार्थों से दूर रहना चाहिए। ऐसे पापों से हमेशा डरते रहना चाहिए।

५ प्रसिद्ध देशाचार का आदर करना–

उत्तम रीति से बहुत काल से चलते आ रहे भोजन, वस्त्र आदि के व्यवहार के विरुद्ध नहीं चलना चाहिए। साथ ही उत्तम रीति रिवाजा का भी त्याग नही करना चाहिए। ऐसा करने से मित्रो, सम्बधियो का विरोध होता है और विरोध मे चित्त ठीक नही रहता और चित्त ठीक नही रहने से धर्म विमुख हो जाते हैं।

६ निंदा नहीं करना–

हल्के से लेकर उत्तम पुरुष तक किसी की निंदा नही करना चाहिए। निंदा करने से कर्म बध होता है और परभव मे नीच गोत्र की प्राप्ति होती है। यदि निंदा ही करनी हो तो स्वय की ही निंदा करो कि मैंने ऐसा निंदनीय कार्य किया।

७ घर मे जाने आने के द्वार बहुत कम रखना–

इससे चोरो का भय कम रहता है। घर अधिक खुले मे या गुप्त भी नहीं होना चाहिए। पडौसी भी अच्छे हो, वही रहना चाहिए जिससे स्त्री पुरुष बच्चो का आचार विचार सुधरता है और मनम उन सम्बन्धो चिन्ता नही रहती।

८ उत्तम आचार वाले सत्पुरुष की सगति करना–

नीच पुरुष, याने जुआरी, धून दुराचारी, याचक, भाट, नट आदि आदि की सौबत धर्मिष्ठ पुरुषो के लिए घातक ह। सज्जन पुरुषो का सग ही लाभकारी है।

९ माता पिता की सेवा करना–

माता पिता की त्रिकाल, अर्थात प्रात मध्याह्न

ग्रौर सायंकाल में वंदन करना चाहिए, उत्तम फल भोजनादि वस्तुएँ देवता के माफिक माता पिता को अर्पित करनी चाहिए ताकि उनकी रुचि के अनुसार उनमें से ले और बाकी की स्वयं उपयोग में ले। इसी प्रकार समस्त कार्यों में माता-पिता की रुचि के अनुसार वर्ताव रखना चाहिए, उनका पूर्ण विनय करना चाहिए। माता-पिता का हम पर बड़ा उपकार है।

१०. उपद्रव वाले स्थान का त्याग करना—

लड़ाई-झगड़ा, दुर्भिक्ष, बीमारी, जन-विरोध इत्यादि उपद्रव रहित स्थान में रहना चाहिए ताकि अकाल मृत्यु न हो, धर्म और अर्थ का नाश न हो, चित्त में अशांति न हो और धर्म साधना मे बाधा न पड़े।

११. निंदनीय कार्य नहीं करना—

देश, जाति और कुल की अपेक्षा से निंदनीय कार्य नही करना चाहिए, जैसे श्रावक को कृषि कार्य, मद्य बनाना या बेचना या सेवन करना, नमक, बर्फ आदि का व्यापार करना।

१२. आमदनी के अनुसार खर्च करना—

अधिक अथवा कम खर्च करने से मनुष्य उडाऊ अथवा कंजूस माना जाता है। अत: समयोचित योग्य रीति से कुटुम्ब के पोषण में, स्वयं के उपयोग मे, देवता, धर्म कार्य के निमित्त, और अतिथि की भक्ति के निमित्त व्यय करना चाहिए। मनुष्य को कुछ न कुछ धन बचाना अवश्य चाहिए ताकि आवश्यकता के समय काम मे आवे। आमदनी के प्रमाण से धर्म मे खर्च अवश्य करना चाहिए। क्योंकि धर्म के प्रभाव से ही हम सुखी, धनी और मानी बने है।

१३. पोषाक धन के अनुसार रखना—

इससे लोक में प्रशंसा होती है। अधिक खर्चीली पोषाक पहिनने से उडाऊ कहलाए जाते हैं। द्रव्य होते हुए भी खराब पोषाक पहिनें तो कृपण कहलाता है।

१४. बुद्धि के आठ गुणों सहित रहना—

धर्म श्रवण या वाचन के समय में निम्न आठ गुणों का अनुसरण करना चाहिए (i) शास्त्र सुनने की इच्छा (ii) शास्त्र सुनना (iii) सुने हुए शास्त्र के अर्थ को स्वीकार करना (iv) ग्रहण किए शास्त्र को भूलना नही (v) शास्त्र के विषय में समझने की दृष्टि से तर्क करना (vi) समझने की दृष्टि से अनुभव के आधार पर विशेष रूप से तर्क करना (vii) मोह और संदेह रहित होकर ज्ञान प्राप्त करना (viii) अमुक वस्तु या बात इसी प्रकार है एवम् इससे कोई फेर फार नहीं है, ऐसा निश्चय करना।

१५. धर्म का श्रवण विशेष गुणकारी मानना—

धर्म श्रवण से मन का खेद दूर होता है, दुखी पुरुष को शांत करता है, मूर्ख को बुद्धि प्रदान करता है, व्याकुल मनुष्य को स्थिरता प्रदान करता है।

१६. अजीर्ण में भोजन नहीं करना—

पहिले किया हुआ भोजन पचने के बाद ही भोजन करना चाहिए। इससे शारीरिक सुख की प्राप्ति होती है और शरीर से सुखी पुरुष ही धर्म साधना कर सकता है। वैद्यक शास्त्र में भी लिखा है कि सब रोग अजीर्ण से होते है। इसी लिए धर्म में उपवास, इकासणा, आयंबिल करना,

भूख से कम खाना (ऊनोदरी तप) इत्यादि का विधान रखा गया है।

१७. भोजन समय पर करना–

योग्य रीति, योग्य समय और योग्य पदार्थ खान से शरीर स्वस्थ रहता है, जिससे धर्म साधना में बाधा नही आती। पिता, माता, बालक, गर्भिणी वृद्ध, रोगी, इन सबको भोजन देकर स्वयं खाना चाहिए। पशुओ और नौकरो का भी ध्यान रखना चाहिए।

१८ धर्म, अर्थ और काम की साधना करना–

धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों के विना मनुष्य की आयु पशु के समान निष्फल समझना। इन तीनो मे भी धर्म श्रेष्ठ है क्योकि धर्म के विना अर्थ (धन) और काम (सभी सुख के साधन) मिलते नही। मुक्ति का कारण धर्म ही है। सुना हुआ, देखा हुआ, किया हुआ, कराया हुआ, अथवा अनुमोदन किया हुआ धर्म सात कुलो को पवित्र करता है। गृहस्थ के कर्त्तव्यो के विषय मे चर्चा चल रही है अत अर्थ और काम की साधना भी गृहस्थ के लिए आवश्यक मानी गई है। किन्तु अर्थ और काम होने पर भी धर्म को नही छोडना चाहिए क्योकि धर्म अर्थ और काम का बीज है।

१९ अतिथि, साधु और दीन की यथा-योग्य भक्ति करना–

इनकी सेवा-भक्ति किए बिना गृहस्थ को भोजन तक नहीं करना चाहिए। प्रथम प्रत्येक वस्तु तीर्थंकर भगवान को नवेद्य के रूप म अर्पित करनी, पीछे साधु वर्ग को अर्पित करना और पीछे देश देशान्तर से आए हुए अतिथियो के साथ भोजन करना चाहिए।

२०. सदा आग्रह रहित रहना–

आग्रही पुरुष युक्ति को जैसी अपनी मति होती है वहा ले जाता है और अनाग्रही पुरुष जहा युक्ति होती है वहा अपनी मति को स्थिर करता है। आग्रह रहित पुरुष गृहस्थ धर्म का पालन अच्छी प्रकार कर सकता है।

२१ गुण का आदर करना–

स्वपर के लिए हितकारक और आत्म साधना मे सहायक गुणो का बहुमान करना गुण की प्रशसा करना। समस्त जगत के जीवो के गुणो की अनुमोदना करना चाहिए जिससे हमे वे गुण प्राप्त हो। प्रिय भाषण और परोपकार ये बडे गुण हैं।

२२. निषिद्ध देश काल का त्याग करना–

निषिद्ध देश मे जाने का एक ही लाभ है कि अर्थ की प्राप्ति होती है, किन्तु इसके हजारो दुर्गुण हैं जैसे, धर्म-हानि, व्यवहार-हानि, हृदय निष्ठुरता। अनार्य देशो मे जाने से धार्मिक पुरुषो का समागम नही होता। यदि किसी को उपकार करने की ही इच्छा हो तो प्रथम घर साफ करे, पीछे पर घर साफ करने का इरादा करे।

निषिद्ध काल का अर्थ यहा पर यह समझना कि, जहा तक हो सके रात्रि मे बाहर कम घूमना और देर रात मे तो जाना ही नही चाहिए। स्त्रियो को तो रात्रि मे कदापि बाहर नही जाना चाहिए क्योकि चोर, गुण्डो का बडा भय रहता है। चौमासे मे तो प्रवास और यात्रा से जहा तक हो बचना चाहिए ताकि हिंसा से बचा जावे।

२३ अपने बल को पहचानना–

बल के ज्ञान बिना किया गया कार्य सफल नही

होता है। बलवान व्यायाम करता है तो शरीर को पुष्टि मिलती है किन्तु निर्बल व्यायाम करे तो शरीर का नाश होता है। क्योंकि शरीर की शक्ति से अधिक परिश्रम शरीर के अवयवों को हानि पहुंचाता है और व्याकुलता बढ़ती है।

२४. व्रती पुरुषों और ज्ञानवृन्द पुरुषों की सेवा करना—

अनाचार का त्याग करके जो मनुष्य शुद्धाचार का पालन करे वह व्रती पुरुष होता है। और जिस पुरुष को यह ज्ञान हो कि क्या कार्य उपयुक्त या अनुपयुक्त है वह ज्ञान वृन्द कहलाता है। ऐसे व्रती और ज्ञान वृन्द पुरुषों की सेवा, वंदन, आदर, बहु-मान से उत्तम फल मिलता है।

२५. परिवार का पोषण करना—

माता-पिता-भाई, स्त्री, बहन, पुत्र को जो वस्तु प्राप्य न हो उसको प्राप्त करना और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना जिससे लोक व्यवहार मे बाधा नहीं आवे और धर्म साधना में विघ्न न हो।

२६. दीर्घदर्शी बनना—

प्रत्येक कार्य पूर्ण सोच विचार कर करना चाहिए ताकि सफलता मिले।

२७. विशेषज्ञ बनना—

कृत्य-अकृत्य, आत्म-पर मे क्या अन्तर है— इसको जानने वाला विशेषज्ञ होता है। जब तक यह ज्ञान नहीं होता तब तक मनुष्य पशु-तुल्य है। आत्मा के गुणों और दोषों को विशेष रूप से जाने वह विशेषज्ञ कहलाता है। जिस मनुष्य के हृदय में यह प्रश्न नही उठता कि अच्छे कर्म करने से मेरी यहां उत्पत्ति हुई है और इस भव से मुझे अच्छे भव मे जाने के लिए क्या करना चाहिए, वह धर्म की ओर अग्रसर नही हो सकता। अतः ऐसा विशेषज्ञ बनना आवश्यक है।

२८. कृतज्ञ होना—

अपना जिसने उपकार किया, उसका हमको कृतज्ञ होना चाहिए। ऐसे कृतज्ञ पुरुष ही धर्म के लायक हो सकते है।

२९. लोक वल्लभ होना—

विनय, विवेक आदि गुणो से संसार में सब का प्रिय बनना।

३०. लज्जावान बनना—

लज्जावान पुरुष की गिनती उत्तम पुरुषो मे होती है। ऐसा मनुष्य प्राण जायगा तो भी अकृत्य नही करेगा और लिए हुए व्रत को भंग नहीं करेगा।

३१. दयावान बनना—

दुखी जीवों को दुख से छुड़ाकर सुखी बनाना यही दया है। दया ही धर्म का मूल है। दयावान ही दान पुण्य कर सकता है।

३२. शांत स्वभावी होना—

मनुष्य को शांत स्वाभावी और अक्रूर आकृति वाला होना चाहिए।

३३. परोपकार करना—

परोपकारी पुरुष सबको प्रिय होगा। जिस मनुष्य में परोपकार की भावना नहीं होगी, वह पुरुष कितना ही ज्ञान, ध्यान तप, जप, शील, संतोष से विभूषित होगा, फिर भी वह शुभ कार्य नही कर सकेगा। जिसमे परोपकार करने की शक्ति हो उसको अपनी शक्ति का उपयोग कर दूसरों का जीवन सफल बनाना चाहिए।

भूख से कम खाना (ऊनोदरी तप) इत्यादि का विधान रखा गया है।

१७. भोजन समय पर करना—

योग्य रीति, योग्य समय और योग्य पदार्थ खाने से शरीर स्वस्थ रहता है, जिससे धर्म साधना मे बाधा नही आती। पिता, माता, आगत, गर्भिणी वृद्ध, रोगी, इन सबको भोजन देकर स्वय खाना चाहिए। पशुओ और नौकरो का भी ध्यान रखना चाहिए।

१८ धर्म, अर्थ और काम की साधना करना—

धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों के बिना मनुष्य की आयु पशु के समान निष्फल समझना। इन तीनो मे भी धर्म श्रेष्ठ है क्योकि धर्म के बिना अर्थ (धन) और काम (सभी सुख के साधन) मिलते नही। मुक्ति का कारण धर्म ही है। सुना हुआ, देखा हुआ, किया हुआ, कराया हुआ, अथवा अनुमोदन किया हुआ धर्म सात कुलो को पवित्र करता है। गृहस्थ के कर्त्तव्यो के विषय मे चर्चा चल रही है अत अर्थ और काम की साधना भी गृहस्थ के लिए आवश्यक मानी गई है। किन्तु अर्थ और काम होने पर भी धर्म को नही छोडना चाहिए क्योकि धर्म अर्थ और काम का बीज है।

१९ अतिथि, साधु और दीन की यथा-योग्य भक्ति करना—

इनकी सेवा-भक्ति किए बिना गृहस्थ को भोजन तक नही करना चाहिए। प्रथम प्रत्येक वस्तु तीर्थंकर भगवान को नवेद्य के रूप मे अर्पित करनी, पीछे साधु वर्ग को अर्पित करना, और पीछे देश देशान्तर से आए हुए अतिथियो के साथ भोजन करना चाहिए।

२० सदा आग्रह रहित रहना—

आग्रही पुरुष युक्ति को जैसी अपनी मति होती है वहा ले जाता है और अनाग्रही पुरुष जहा युक्ति होती है वहा अपनी मति को स्थिर करता है। आग्रह रहित पुरुष गृहस्थ धर्म का पालन अच्छी प्रकार कर सकता है।

२१ गुण का आदर करना—

स्वपर के लिए हितकारक और आत्म साधना मे सहायक गुणो का बहुमान करना गुण की प्रशसा करना। इससे जगत के जीवो के गुणो की अनुमोदना करना चाहिए जिससे हमे वे गुण प्राप्त हो। प्रिय भाषण और परोपकार ये बड़े गुण हैं।

२२ निषिद्ध देश काल का त्याग करना—

निषिद्ध देश मे जाने का एक ही लाभ है कि अर्थ की प्राप्ति होती है, किन्तु इसके हजारो दुगुण हैं, जैसे, धर्म-हानि, व्यवहार-हानि, हृदय निष्ठुरता। अनार्य देशो मे जाने से धार्मिक पुरुषो का समागम नही होता। यदि किसी को उपकार करने की ही इच्छा हो तो प्रथम घर साफ करे, पीछे पर घर साफ करने का इरादा करे।

निषिद्ध काल का अर्थ यहा पर यह समझना कि, जहा तक हो सके रात्रि मे बाहर कम घूमना और देर रात मे तो जाना ही नही चाहिए। स्त्रियो को तो रात्रि मे कदापि बाहर नही जाना चाहिए क्योकि चोर, गुण्डो का बडा भय रहता है। चौमासे मे तो प्रवास और यात्रा से जहा तक हो बचना चाहिए ताकि हिंसा से बचा जावे।

२३ अपने बल को पहचानना—

बल के ज्ञान बिना किया गया कार्य सफल नहीं

होता है। बलवान व्यायाम करता है तो शरीर को पुष्टि मिलती है किन्तु निर्बल व्यायाम करे तो शरीर का नाश होता है। क्योंकि शरीर की शक्ति से अधिक परिश्रम शरीर के अवयवों को हानि पहुंचाता है और व्याकुलता बढती है।

२४. व्रती पुरुषों और ज्ञानवृन्द पुरुषों की सेवा करना—

अनाचार का त्याग करके जो मनुष्य शुद्धाचार का पालन करे वह व्रती पुरुष होता है। और जिस पुरुष को यह ज्ञान हो कि क्या कार्य उपयुक्त या अनुपयुक्त है वह ज्ञान वृन्द कहलाता है। ऐसे व्रती और ज्ञान वृन्द पुरुषों की सेवा, वंदन, आदर, बहुमान से उत्तम फल मिलता है।

२५. परिवार का पोषण करना—

माता-पिता-भाई, स्त्री, बहन, पुत्र को जो वस्तु प्राप्य न हो उसको प्राप्त करना और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना जिससे लोक व्यवहार मे बाधा नही आवे और धर्म साधना मे विघ्न न हो।

२६. दीर्घदर्शी बनना—

प्रत्येक कार्य पूर्ण सोच विचार कर करना चाहिए ताकि सफलता मिले।

२७. विशेषज्ञ बनना—

कृत्य-अकृत्य, आत्म-पर मे क्या अन्तर है—इसको जानने वाला विशेषज्ञ होता है। जब तक यह ज्ञान नही होता तब तक मनुष्य पशु-तुल्य है। आत्मा के गुणो और दोषों को विशेष रूप से जाने वह विशेषज्ञ कहलाता है। जिस मनुष्य के हृदय मे यह प्रश्न नही उठता कि अच्छे कर्म करने से मेरी यहा उत्पत्ति हुई है और इस भव से मुझे अच्छे भव मे जाने के लिए क्या करना चाहिए, वह धर्म की ओर अग्रसर नही हो सकता। अतः ऐसा विशेषज्ञ बनना आवश्यक है।

२८. कृतज्ञ होना—

अपना जिसने उपकार किया, उसका हमको कृतज्ञ होना चाहिए। ऐसे कृतज्ञ पुरुष ही धर्म के लायक हो सकते है।

२९. लोक वल्लभ होना—

विनय, विवेक आदि गुणों से संसार में सब का प्रिय बनना।

३०. लज्जावान बनना—

लज्जावान पुरुष की गिनती उत्तम पुरुषों में होती है। ऐसा मनुष्य प्राण जायगा तो भी अकृत्य नही करेगा और लिए हुए व्रत को भंग नही करेगा।

३१. दयावान बनना—

दुखी जीवों को दुख से छुड़ाकर सुखी बनाना यही दया है। दया ही धर्म का मूल है। दयावान ही दान पुण्य कर सकता है।

३२. शांत स्वभावी होना—

मनुष्य को शांत स्वाभावी और अक्रूर आकृति वाला होना चाहिए।

३३. परोपकार करना—

परोपकारी पुरुष सबको प्रिय होगा। जिस मनुष्य मे परोपकार की भावना नही होगी, वह पुरुष कितना ही ज्ञान, ध्यान तप, जप, शील, संतोष से विभूपित होगा, फिर भी वह शुभ कार्य नही कर सकेगा। जिसमें परोपकार करने की शक्ति हो उसको अपनी शक्ति का उपयोग कर दूसरों का जीवन सफल बनाना चाहिए।

३४. अतरग शत्रुओ का त्याग करना --

काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष का त्याग करना चाहिए। इनको त्याग करने वाला ही धम की ओर अग्रसर हो सकता है।

३५ इन्द्रियो को वश मे करना--

गृहस्थ को स्वस्त्री मे सतोप, एक स्त्री का व्रती, पव तिथियो मे स्त्री के पास नही जाना चाहिए। अत इन्द्रियो को मर्यादा मे रखना चाहिए।

इस प्रकार धर्म की ओर अग्रसर होने के लिए गृहस्थो के लिए यह आवश्यक है कि वह उपरोक्त पैतीस गुणो को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। तभी वह अपने मनुष्य जन्म को सफल बना सकेंगे। मार्गानुसारी के ३५ गुण अपनाने से हम धर्म की आराधना सरलता से कर सकेंगे और हम मोक्ष माग की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

● ● ●

卐 नवकार मंत्र 卐

(रचियता— श्री हरिश्चन्द्र महता)

नवकार मत्र जपना, नवकार मत्र जपना ॥
धीरे धीरे रटना,
नवकार मत्र जपना ॥

शास्त्रो ने महिमा गाई,
सन्तो ने की बडाई,
यह महामत्र है अपना ॥ नवकार मत्र जपना ॥१॥

दुष्कर्मो से बचता,
मोक्ष की राह दिखाता,
यह पवित्र मत्र है अपना ॥ नवकार मत्र जपना ॥२॥

यह निमल हमे बनाता,
क्रोध को दूर भगाता,
यह रक्षा कवच है अपना ॥ नवकार मत्र जपना ॥३॥

यह विनम्र हमे बनाता,
भय रोग दूर हटाता,
मत्र शाति शील अपना ॥ नवकार मत्र जपना ॥४॥

'हरि' नीयमित ध्यान लगाना,
सच्चे मन से रटना,
नवकार मन्त्र अपना ॥ नवकार मन्त्र अपना ॥

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

महासमिति द्वारा नियुक्त विभिन्न उप समितियों के सदस्यों की नामावली

श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर, बरखेड़ा

१. श्री उमरावमल पालेचा	संयोजक
२. ,, किस्तूरमल शाह	सदस्य
३. ,, कपिलभाई शाह	,,
४. ,, हीराचन्द बैद	,,
५. ,, सरदारमल लूनावत	,,
६. ,, त्रिलोकचन्द कोचर	,,
७. ,, चिन्तामणि ढढ्ढा	,,
८. ,, दानसिंह कर्णावट	,,
९. , शिखरचन्द कोचर	,,
१०. ,, शान्तिचन्द डागा	,,
११. ,, ज्ञानचन्द टुंकलियां यस्दस एवं स्थानीय व्यवस्थापक	

श्री शान्तिनाथ स्वामी का मन्दिर, चन्दलाई

१. श्री बलवन्तसिंह छजलानी	संयोजक
२. ,, कपिल भाई के शाह	सदस्य
३. ,, रणजीतसिंह भण्डारी	,,
४. ,, ज्ञानचन्द भण्डारी	,,
५. ,, शान्तिकुमार सिंघी	,,
६. ,, राकेश कुमार मोहनोत	,,
७. ,, विमलकान्त देसाई	,,

श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर, जनता कालोनी जयपुर

१. श्री शान्तिकुमार सिंघी	संयोजक
२. ,, डा० भागचन्द छाजेड़	सदस्य
३. ,, किस्तूरमल शाह	,,
४. ,, हीराचन्द बैद	,,
५. ,, भास्कर भाई चौधरी	,,
६. ,, घीसूलाल मेहता	,,
७. ,, शिखरचन्द पालावत	,,
८. ,, श्रीचन्द डागा	,,
९. ,, गणपतसिंह कर्णावट	,,
१०. ,, चिन्तामणी ढढ्ढा	,,
११ ,, मनोहरमल लूनावत	,,
१२. श्री राकेश कुमार मोहनोत	,,
१३. ,, बलवन्तसिह छजलानी	,,
१४. ,, जसवन्तमल सांड	,,
१५ ,, राजमल सिंघी	,,
१६. ,, भागचन्द छाजेड़	,,
१७. ,, तरसेमकुमार	,,
१८. ,, नरेन्द्रकुमार	,,
१९. ,, गिरीशकुमार शाह	,,
२०. ,, भगवतसिंह कोचर	,,
२१. ,, ज्ञानचन्द भण्डारी	,,

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर

वार्षिक विवरण–१९८२–८३

महासमिति द्वारा अनुमोदित

प्रस्तुतकर्ता—श्री मोतीलाल भडकतिया, सघ मत्री

परमपूज्य पाद ज्योतिपादि श्रुतभास्कर श्री सम्मेतशिखरादि तीर्थोद्धारक, जिन शासन शिरोमणि, महान तपम्भानिधि, आचाय भगवन्त श्री १००८ श्रीमद्विजय पूर्णानन्द सूरीश्वरजी म० सा० के प्रथम पट्टधर श्री सम्मेतशिखर तीर्थ के महान रक्षक, चार वर्षीतप, पाच सौ इक्यावन छठ, तीन सौ पन्द्रह अट्ठम उक्कीस चार उपवास एव दस अट्ठाई तप के परम तपस्वी तपोमूर्ति परमपूज्यपाद आचाय देव श्रीमद्विजय हीकार-सूरीश्वरजी म० सा० एव परम पूज्य पद्मजी महाराज सा० श्री पुरन्दरविजयजी गणिवर्यादि, उपस्थित साधर्मी बन्धुओ एव बहिनो,

श्री जन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर का वित्तीय वष १९८२–८३ का आय–व्यय विवरण एव विगत वार्षिक विवरण के पश्चात् गत समय मे हुए काय कलापो का सक्षिप्त विवरण लेकर मै आपकी सेवा मे उपस्थित हू।

विगत चातुर्मास

जैसा कि आपको विदित है कि गत वष परमपूज्य आचाय श्रीमद्विजय मनोहरसूरीश्वरजी म० सा० आदि ठाणा २ का यहा पर चातुर्मास था और इस वष भी महान तपस्वी आचाय भगवन्त यहा पर विराजमान है। यह श्री सघ का प्रबल पुण्योदय एव परम सौभाग्य है कि विगत तीन वर्षो से यहा पर निरन्तर आचाय भगवन्तो के चातुर्मास सम्पन्न हो रहे हैं। गत चातुर्मासीय आराधनायें आचाय श्रीमद्विजय मनोहरसूरीश्वरजी म० सा० की निश्रा मे सानन्द एव सहर्षोल्लासपूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुई थी। गत महावीर जन्म वाचना दिवस पर जहा 'मणिभद्र' के २४वें अक का विमोचन श्रीमान सरदारमलजी सा० सूनावत के कर कमलों से सम्पन्न हुआ था, वहा मिगसर सुदी ५, स० २०३६ को सम्पन्न होने वाली चन्दलाई मदिर की प्रतिष्ठा हेतु ध्वजारोहण एव द्वारोद्घाटन के भाग्यशाली कूपन जारी करने का शुभारम्भ क्रमश श्री फतेहसिंहजी सा० कर्णावट एव श्री कपिलभाई के शाह के कर कमलो से सम्पन्न हुआ था। स्वप्नों जी की बोलिया भी उत्साहवद्धक थी तथा जन्मोत्सव पर नवयुवक मण्डल द्वारा प्रस्तुत डाडिया नृत्य एव वाद्य वृन्दों का शुभ कायक्रम सम्पन्न हुआ था। श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल के कार्यकर्ताओ को प्रशसनीय सेवाओ के लिए सघ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री निरजनमलजी शाह ने पुरस्कृत किया था।

आसोजी ओलीजी की आराधनायें भी बहुत ही सुन्दर ढग से सम्पन्न हुई एव इसी मध्य अट्ठाई महोत्सव का आयोजन भी सम्पन्न हुआ था। दिवाली एव कार्तिक पूर्णिमा की आराधनायें एव अन्य आयोजन भी बहुत ही भव्य एव सुन्दर ढग से सम्पन्न हुए। क्रमवार अट्ठम तप आराधना करने वाले आराधकों का बहुमान किया गया।

चातुर्मास काल पूर्ण होने पर पूज्य आचाय

भगवन्त का चातुर्मास पलटवाने का लाभ डा० डूंगरसिंहजी पोकरना ने लिया। इस विहार के तत्काल पश्चात् आचार्य भगवन्त चन्दलाई ग्राम मे पधारें जहां आपने प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न कराया था। तत्पश्चात् आपने उदयपुर की ओर विहार किया।

चातुर्मास की स्वीकृति

विगत चातुर्मास पूर्ण होने पर इस चातुर्मास हेतु विभिन्न गुरु भगवन्तों एवं साध्वीजी महाराज साहवान की सेवाओं में विनती पत्र प्रेषित किए गए एवं स्वीकृति की सम्भावना को दृष्टिगत रखते हुए १४ अप्रैल, १९८३ को श्री सघ के अध्यक्ष श्री हीराचन्दजी चौधरी के नेतृत्व में एक निजी यात्री बस लेकर परमपूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद्विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी म० सा० की सेवा में फलवृद्धि पार्श्वनाथ तीर्थ मेड़ता रोड पर उपस्थित हुए और आपसे यह चातुर्मास जयपुर मे ही करने की सविनय विनती की। इस अवसर पर अन्य अनेको सघों के प्रतिनिधि भी विनती लेकर उपस्थित हुए थे लेकिन आपने जयपुर श्रीसघ की विनती को मान देते हुए यह चातुर्मास जयपुर मे करने की स्वीकृति प्रदान की एवं उसी समय जय बुला दी गई। आपकी इस अनुपम कृपा के लिए जयपुर श्रीसघ आपका अत्यन्त कृतज्ञ एवं ऋणी है। तत्पश्चात् जयपुर श्रीसघ की ओर से श्री पार्श्वनाथ पंच कल्याणक पूजा भी वहां पर पढाई गई।

वाद में विहार की व्यवस्था हेतु संघ के उपाध्यक्ष श्री कपिलभाई के शाह एवं संघ मत्री श्री मोतीलाल भड़कतिया एवं श्री चम्पालालजी कोचर पुनः मेड़ता रोड पर आपकी सेवा में उपस्थित हुए। दिनांक १६ जून, १९८३ को आपने मेड़ता रोड से जयपुर के लिए विहार किया।

आचार्य भगवन्त का शुभागमन

पूज्य आचार्य भगवन्त एवं पन्यासजी म० सा० भीषण गर्मी एवं मौसम की प्रतिकूलताओं को सहन करते हुए दिनांक ४ जुलाई, १९८३ को जयपुर नगर मे पधारे। एक पखवाडे तक आप स्टेशन रोड पर स्थित पुंगलियों की धर्मशाला में विराजे जहां आपने अट्ठाई का तप किया।

श्री वीर सम्वत् २५०९, वि० सं० २०४० अषाढ शुक्ला ६, शुक्रवार, दिनांक १५ जुलाई, १९८३ को प्रातः ८–१५ वजे त्रिपोलिया गेट पर आपका समैय्या किया गया। यहां से भव्य एवं विशाल जुलूस हाथी घोड़े, बैंड वाजे और सैंकड़ों साधर्मी भाई वहिनो के साथ रवाना होकर त्रिपोलिया बाजार, जौहरी बाजार, घी वालों का रास्ता होते हुए श्री आत्मानन्द सभा भवन पहुंचा। मार्ग में स्थान २ पर गंवलिया करके गुरु भक्ति की गई। यहां पहुंचने पर आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञपित करने हेतु सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। भवन में प्रवेश करने पर श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल के स्वयं सेवको द्वारा वाद्य वृन्दों से आपका स्वागत किया गया। श्री सघ के अध्यक्ष श्री हीरा चन्दजी चौधरी ने श्रीसघ की ओर से आपका अभिनन्दन किया एवं सघ मंत्री श्री मोतीलाल भड़कतिया ने विगत सम्वत् २०३८ मे हुए आपके चातुर्मास की स्मृतियां सजग करते हुए विगत चातुर्मास मे हुई पूजाओं एवं आराधनाओं का वर्णन किया एवं इस चातुर्मास में होने वाले कार्य-क्रमों की संक्षिप्त रुपरेखा प्रस्तुत की।

आचार्य भगवन्त ने भी सभा को सम्बोधित करते हुए इस यंत्रवादी वातावरण से उत्पन्न हिंसा जनित पाप कर्मो से मुक्ति का मार्ग जिनेन्द्र भक्ति, जिनेश्वर देव की प्रतिमा पूजन एवं नवकार मंत्र

की आराधना पर बल दिया।

इस अवसर की प्रभावना का लाभ श्री विजय राजजी लल्लूजी ने लिया।

चातुर्मासिक आराधनायें

आपके प्रवेश के दिन श्री पार्श्वनाथ पच कल्याणक पूजा पढाई गई तथा चार दिन तक निरन्तर पूजायें पढाई गई। अब प्रति रविवार को दिन मे विभिन्न प्रभु पूजाएँ पढाई जा रही है।

श्रावण वदी २ को "उत्तराध्ययन सूत्र" वोहराने का लाभ श्री कपिलभाई के शाह ने लिया और तभी से निरन्तर प्रात ८–३० वजे से आचार्य भगवन्त के प्रभावी प्रवचन हो रहे हैं।

प्रात ७ बजे से वाद्य वृन्दो सहित स्नात्रपूजा महा महोत्सव का कायक्रम भी निरन्तर चल रहा है जो सम्पूर्ण चातुर्मास काल तक जारी रहेगा। स्नात्र महा महोत्सव की क्रियाएँ क्रियाकारक श्री शान्तिचन्दजी भण्डारी एव श्री घनरूपमलजी नागौरी सम्पन्न कराते हैं। जिनेन्द्र भक्ति एव आराधना निमित्त यह कायक्रम सम्पूर्ण चातुर्मास काल तक श्री प्रेमराजजी पुखराज मेहता सादडी (राणकपुर) वालो की ओर से जारी रहेगा।

इसी प्रकार अखण्ड अट्ठम तप की क्रमवार आराधना भी जारी है जिसके पारणे यहा पर स्थित श्री वर्धमान आयम्बिलशाला मे सम्पन्न होते हैं। पारणे कराने का लाभ श्री इन्द्रचन्दजी जवानमलजी भाणीरामजी [illegible] पालीवालो ने लिया है।

इस अल्प प्रवासकाल मे ही पू० आचार्य भगवन्त तीन अट्ठाई एव पाच अट्ठम तप की आराधना स्वय भी सम्पन्न कर चुके हैं।

श्रावण सुदी ८ से १२ तक नवान्हिका महोत्सव का भव्य आयोजन भी सम्पन्न हुआ है जिसका लाभ एक सद्गृहस्थ हस्ते श्री प्रेमराजजी पुखराजजी मेहता ने लिया है। नवान्हिका महोत्सव के अन्तगत उव्वसगर, भक्तामर एव शाति स्नात्र जैसी महान एव बृहद् पूजाएँ सम्पन्न हुई हैं। श्रावण सुदी ८ को श्री सुमतिनाथ जिनालय मे पार्श्वनाथ निर्वाण कल्याणक महोत्सव निमित्ते सोने चादी के वरको की आगी, सवा लाख पुष्पो की झाकी एव बारह सौ इक्यावन दीपो की दिवाली भी की गई। इन सबसे जिन–प्रतिमाओ एव जिनालय की भव्यता अगम्य थी एव दर्शनार्थियो के लिए यह अलौकिक अवसर था। श्रावण सुदी १० को अट्ठारह अभिषेक का आयोजन भी सम्पन्न हुआ।

पूज्य आचाय भगवन्त की निश्रा मे उपरोक्त वर्णित कतिपय आराधनाओ के अतिरिक्त भी अनेकों विभिन्न तपस्याये एव आराधनायें सम्पन्न हो रही है और जयपुर श्रीसघ मे धर्माराधना पूर्ण उल्लासमय वातावरण व्याप्त है।

अन्य साधु-साध्वी वृन्द का आगमन

विगत चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् इस श्रीसघ को निम्नाकित पूज्य साधु-साध्वी जी म० सा० की सेवा भक्ति का लाभ प्राप्त हुआ है —

मुनि श्री शान्तीविजयजी ठाणा—५
मुनि श्री सुमतीसागरजी, ठाणा—२
गणिवर्य श्री जनकविजयजी, ठाणा—५
गणिवय जयन्तविजयजी मधुकर, ठाणा—७
साध्वी श्री प्रियदशनाश्रीजी ठाणा—२
साध्वी श्री हेमेन्द्रश्रीजी—ठाणा —५
साध्वी श्री विनयप्रभाश्रीजी–ठाणा—३

सघ भक्ति

इस बार उदयपुर, चण्डीगढ पालनपुर, मेरठ माहवा, ब्यावर आदि स्थानो से वसो द्वारा यात्री

सघ पधारे जिनकी भक्ति का लाभ इस श्रीसंघ को प्राप्त हुआ। उपरोक्त सामूहिक यात्री संघों के अतिरिक्त विगत चातुर्मास काल एवं तदनन्तर लगातार अब तक व्यक्तिगत रूप से पधारे हुए साधर्मी बन्धुओं की भक्ति का लाभ भी इस श्रीसंघ को प्राप्त होता रहा है।

श्री खरतरगच्छ संघ द्वारा पर्यूषण पर्व के पश्चात् आयोजित की जाने वाली एक दिवसीय यात्रा के अवसर पर जनता कालोनी मन्दिर मे यात्रियों के दर्शनार्थ पधारने पर पूर्ववत् श्रीसंघ की ओर से उनकी भक्ति की गई।

श्री सम्मेतशिखरजी तीर्थ हेतु प्रस्ताव

श्री सम्मेतशिखर जी तीर्थ पर व्याप्त दुर्व्यवस्था के समाचार निरन्तर इस संघ को भी प्राप्त होते रहे है। इसका मूल कारण दो पक्षो मे चल रहे न्यायालयिक विवाद है। इस सम्बन्ध मे सघ की महासमिति द्वारा प्रस्ताव पारित कर दोनों पक्षों से सद्भावनापूर्ण वातावरण मे न्यायालयो से बाहर ही विवादों का निराकरण करने का अनुरोध किया गया। इस प्रस्ताव को जैन समाचार पत्रों एवं गुरु भगवन्तो द्वारा पर्याप्त महत्व दिया गया जिसका सूपरिणाम भी सामने आया है और दोनों पक्षों मे समझौता हो जाने का समाचार प्राप्त हुआ है।

संघ की स्थायी गतिविधियां

कतिपय उल्लेखनीय घटनाओ का संक्षिप्त दिग्दर्शन प्रस्तुत करने के पश्चात् अब मैं इस श्रीसंघ की स्थायी गतिविधियों के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहा हूं।

श्री सुमतिनाथ स्वामी का मंदिर, जयपुर

२५६ वर्षीय इस अति प्राचीन एवं भव्य जिनालय की व्यवस्था यथावत् सुचारु रूप से वर्ष भर सम्पन्न होती रही है। सेवा पूजा करने वालों एवं दर्शनार्थियों की संख्या मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस वर्ष इस सीगे में १,०६,६६२)७० की प्राप्तियां हुई एवं व्यय १,१८,६२६)६६ पैं० का हुआ है। इसके अन्तर्गत पूजा द्रव्य में नगद १०५२०)६१ की प्राप्तियां एवं ११४६२)१५ का व्यय हुआ है। पूजा सामग्रियों की भेंट पृथक से प्राप्त होती रही है।

जैसा कि गत वर्ष अंकित किया गया था कि श्री भंवरलालजी कलाकार की सेवायें प्राप्त हो गई है। उनसे रंग मण्डप के बाहरी भाग की चित्रकारी का कार्य पूर्ण करा लिया गया। तत्पश्चात् उनकी अस्वस्थता के कारण यह कार्य जारी रखना सम्भव नहीं हो सका और शेष कार्य को रोक देना पड़ा है। मूल गम्भारे मे चित्रकारी का जीर्णोद्धार कराना आवश्यक है लेकिन सूयोग्य कलाकार की सेवायें प्राप्त होने पर भी यह सम्भव हो सकेगा।

मूल गम्भारे एवं रंग मण्डप पर स्थित गुम्बजों के जीर्णोद्धार का जो कार्य गत वर्ष प्रारम्भ किया गया था अब लगभग पूर्ण हो चुका है। रग मण्डप के गुम्बज के जीर्णोद्धार पर १०५२२)६५ रु० का व्यय हुआ है तथा मूल गम्भारे के ऊपर के गुम्बज के जीर्णोद्धार पर ६४०८)४५ अब तक व्यय हो चुके है। कुछ कार्य शेष है जो शीघ्र ही पूरा हो जाएगा।

मूल गम्भारे में भगवान श्री धर्मनाथ स्वामी की प्रतिमाजी को संगमरमर के कमल की गादी पर विराजमान कर दिया गया है और इससे पूर्व में जो असातना होती थी अब वह समाप्त हो गई है।

भगवान महावीर स्वामी की वेदी के नीचे की पट्टियों के यकायक क्षतिग्रस्त हो जाने से विषम स्थिति पैदा हो गई थी। उनके जीर्णोद्धार का कार्य भी तत्काल हाथ में लिया गया और सुचारू रूप

से कार्य करा कर उन्हें सुरक्षित कर दिया गया है। इस कार्य पर अभी तक ७,६००)६५ व्यय हुए हैं। काय चालू है जो शीघ्र ही पूरा कराया जा रहा है। मंदिरजी की सीमा मे अन्य रग रोगन आदि का कार्य भी कराया गया है।

श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर जनता कालोनी, जयपुर

जसा कि गत विवरण में अंकित किया गया था कि इस क्षेत्र मे बढती हुई साधर्मी बन्धुओं की अभिवृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए एव वर्षों से विचाराधीन आमूलचूल जीर्णोद्धार कराकर भव्य जिनालय के निर्माण की परम आवश्यकता है। वर्षों मे योजना विचाराधीन थी लेकिन कार्यारम्भ नहीं हो सका था।

गत वर्ष चातुर्मासार्थ विराजित परम पूज्य आचार्य श्रीमद्विजय मनोहर सूरीश्वरजी म० सा० की प्रेरणा एव निर्देशानुसार इस काय का शुभारम्भ श्रावण सुदी ८ को खाद मुहुर्त के साथ कर दिया गया था। इस हेतु मनोनीत उप समिति एव सयोजक श्री शांतीकुमारजी सिंघी के कुशल नेतृत्व में जिनालय निर्माण का काय द्रुतगति से जारी है। रग मण्डप के मच एव मूल गम्भारे की छत तक का काय लगभग पूण हो गया है एव इस वर्ष के वार्षिकोत्सव के अवसर पर पूजा पढाने का काय भी इसी मच पर सम्पन्न हुआ। प्रतिमाजी भराने का कार्य भी शीघ्र ही प्रारम्भ किया जा रहा है और यह आशा है कि निकट भविष्य मे ही यह काय पूण होकर प्रतिष्ठा का काय भी शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

दानदाताओं का आर्थिक योगदान भी उत्साह वधक रहा है। इस निर्माण पर वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक १,०४१०८)२७ की राशि व्यय हुई थी लेकिन यह विवरण अंकित करते समय तक लगभग २ लाख १० हजार की राशि व्यय हो चुकी है। जिनालय निर्माण हेतु योगदान मे वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक ६६१३१) रु० प्राप्त हुए थे लेकिन अब यह राशि बढकर नव्वे हजार तक पहुच गई है।

आर्थिक योगदान हेतु एक प्रतिशत भागीदारी एव एक रुपया प्रति दिन के योगदान की जो योजना घोषित की गई थी उसके तहत एक प्रतिशत भागीदारी मे ३३ व्यक्तियो ने एव एक रुपया प्रतिदिन के योगदान मे ५६ व्यक्तियो ने अपना नाम पजीकृत कराया था। इनमे से अधिकाश सदस्यो का योगदान एक मुश्त भी एव समयानुसार किश्तों में प्राप्त हो रहा है। एक मुश्त सहायता प्रदान करने वालों ने भी अपनी भावानुसार अच्छा योगदान किया है।

उपरोक्त उत्साहवधक योगदान के होते हुए भी कार्य की पूणता के लिए अभी और भी अधिक उदार योगदान अपेक्षित है। जयपुर मूर्तिपूजक सघ के लिए यह एक अत्यन्त प्रतिष्ठापूण एव कल्याणकारी कार्य है और दानदाताओ के भरसक एव उदार आर्थिक सहयोग पर ही इसकी क्रियान्विति निभर है। अत दानदाताओ से अधिक से अधिक और शीघ्रातिशीघ्र राशि उपलब्ध कराने की विनती है।

इस जिनालय का २६ वा वार्षिकोत्सव श्रावण सुदी ६ रविवार, दि० १४ अगस्त १९८३ को परमपूज्य आचार्य श्री मद्विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी म० सा० की पावन निश्रा मे सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर श्रीपार्श्वनाथ पचकल्याणक पूजा पढाई गई। तत्पश्चात् साधर्मी भक्ति का आयोजन सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर डा० भागचन्दजी छाजेड़ ने अपने निजि प्लाट में से छ- फुट चौड़ी जमीन मार्ग हेतु और प्रदान की है जिसका क्षेत्रफल ५४ स्क. गज है इसके लिये महासमिति डाक्टर छाजेड़ सा० के प्रति धन्यवाद अर्पित करती है।

श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर, बरखेड़ा

उप समिति एवं संयोजक श्री उमरावमलजी पालेचा की देख-रेख मे इस जिनालय का कार्य भी वर्ष भर सुचारु रूप से सम्पन्न होता रहा है। इस जिनालय से विभिन्न सीगो मे कुल ८२४१)६० की प्राप्तियां हुई एवं व्यय १६५००)१० रु० का हुआ है।

मंदिर की मूल वेदी के दोष निवारण के कार्य का उल्लेख गत विवरण में किया गया था।महा-समिति को सतोष है कि यह कार्य भी वर्षो उपरान्त पूर्ण हो गया है। जिनालय की जो दीवारें क्षतिग्रस्त हो गई थी उनके जीर्णोद्धार का कार्य भी सम्पन्न करा दिया गया है। इन कार्यो पर कुल ८५५०)२० की राशि व्यय हुई है।

परम्परानुसार इस बार फाल्गुन शुक्ला ६ रविवार,, दिनाक २० मार्च, १९८३ को वार्षिको-त्सव सम्पन्न हुआ जिसमें पूजा पढ़ाने, साधर्मी वात्सल्य आदि सभी कार्य संयोजक व उप समिति की देखरेख मे सुचारु रूप से सम्पन्न हुए।

मुख्य मार्ग से बरखेड़ा ग्र म तक पहुंचने के लिए सडक की आवश्यकता सदैव रही है और इसके लिये हर सम्भव प्रयास किए जाते रहे हैं। इस वर्ष के अकाल राहत कार्यो के अन्तर्गत यह कार्य भी लगभग पूरा हो गया है और अब शिव-दासपुरा से सीधी सड़क बरखेड़ा ग्राम तक बन गई जिस पर शीघ्र ही यातायात हो जाना सम्भा-वित है।

श्री शान्तीनाथ स्वामी का जिनालय, चन्दलाई

इस जिनालय के भी जीर्णोद्धार का कार्य मनोनीत उप समिति एवं इसके संयोजक श्री बल-वन्तसिह जी छजलानी के संयोजकत्व में त्वरित गति से सम्पन्न हुआ उसके लिए महासमिति को हार्दिक संतोष एवं प्रसन्नता है। संगमरमर के मूल गम्भारे का निर्माण तो कराया ही गया है, साथ ही शिखर का नव-निर्माण कार्य भी सम्पन्न हो गया है। जिनालय से संलग्न कमरों का जीर्णोद्धार कराकर आवास योग्य बनाया गया है। जीर्णोद्धार पर मन्दिरजी एव साधारण से क्रमशः ५६८१३)२६ एव ५००४)०० व्यय हुए हैं। प्रतिष्ठा महोत्सव पर साधारण से २४६८०)११ एवं मन्दिर सीगे से ३७५४)२८ व्यय हुए। इसके मुकाबले में प्रतिष्ठा के अवसर पर साधारण से १७६४४)८५ एवं मन्दिर जी से १३८२७)२५ की आय हुई है। दस हजार रुपये जीर्णोद्धार में योग-दान हेतु श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ ट्रस्ट मेवानगर से प्राप्त हुए है। बोलियों के तहत अभी और राशि प्राप्त होना शेष है। शेष राशी का समायोजन संघ की निधि से किया गया है।

जीर्णोद्धार कार्य पूर्ण होते ही मगसर वदी ५ सम्वत् २०३९ को परमपूज्य आचार्य श्रीमद्विजय मनोहर सूरीश्वरजी म० सा० की पावन निश्रा में पुनर्प्रतिष्ठा का कार्य बहुत ही उल्लासपूर्ण वातावरण मे सम्पन्न हुआ। चातुर्मास समाप्ति के तुरन्त पश्चात् आचार्य भगवन्त चन्दलाई ग्राम में पधारे जहां आपका भव्य समैय्या ग्रामवासियों की ओर से किया गया। इस अवसर पर पंचान्हिका महो-त्सव के साथ प्रतिष्ठा महोत्सव का शुभारम्भ हुआ। जल यात्रा के वरघोड़ा का आयोजन चन्द-लाई ग्रामवासियों के लिए अद्भुत एवं अविस्मरणीय घटना थी जिसमे उन्होंने पूर्ण सहयोग प्रदान

किया। मगसर वदी ५ को शुभ मुहुर्त्त मे प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। मूलनायक भगवान को विराजमान कराने का लाभ श्री कपिलभाई के शाह ने लिया तथा भगवान श्री चन्द्र प्रभु स्वामी को विराजमान कराने का लाभ श्री रणजीतसिंह जी भडारी एव श्री पाश्वनाथ स्वामी को विराजमान कराने का लाभ श्रीमती किरणबाई ने प्राप्त किया। प्रासाद देवी एव मणिभद्रजी को विराजमान कराने का लाभ क्रमश श्री दलपतसिंहजी बलवन्तसिहजी छजलानी एव श्री बुधसिहजी हीराचन्दजी वैद ने प्राप्त किया। गरुड यक्ष यक्षिणी विराजमान कराने का लाभ क्रमश श्री केसरीचन्दजी सिंघी एव श्री चौधरी मगलचन्दजी छगनाजी ने लिया। कलश चढाने का लाभ श्री रणजीतसिहजी भडारी ने लिया। अन्य बोलियो मे भगवान का रोकडिया बनने की बोली श्री किस्तुरचन्दजी मोतीलालजी भडकतिया, रथ व हाथी पर बैठने की बोली श्री बुधसिहजी हीराचन्दजी वैद, तोरण बधाने की बोली श्री मगलचन्दजी छगनाजी एव श्रृगार चोकी की बोली श्री जयती लाल गगनभाई ने ली। इनके अतिरिक्त भी और बोलिया हुई थी। ध्वजारोहण एव द्वारोद्घाटन के लिए बोली करवाने की अपेक्षा भाग्यशाली कूपन जारी किए गए जो क्रमश ११) रु० एव ५) रु० के थे। भगवान महावीर जन्मोत्सव १९८२ के अवसर पर ध्वजदण्ड कूपन विक्री का उद्घाटन श्री फतेहसिहजी कर्णावट एव द्वारोद्घाटन कूपन की विक्री का उद्घाटन श्री कपिलभाई के शाह के कर कमलों से सम्पन्न हुआ था। इन कूपनो की विक्री से कुल ४७६१) रु० की राशि प्राप्त हुई। चन्दलाई ग्राम मे इनकी लाटरी निकाली गई जिसमे ध्वज-दण्डारोहण का सौभाग्य श्री जैनेन्द्र कुमार ढड्ढा एव द्वारोद्घाटन का सौभाग्य श्री शातिकुमार लोढा को प्राप्त हुआ।

प्रतिष्ठाजी के पश्चात् आयोजित सम्मान समारोह मे सयोजक श्री बलवन्तसिहजी छजलानी का सम्मान रेशमी साफा बधवा कर सघ की ओर से किया गया। श्री कपिलभाई के शाह ने उन्हें अपनी ओर से गलीचा भेंट किया तथा अन्य भेंटो द्वारा उनकी अमूल्य एव अथक सेवाओ के लिये उन्हे सम्मानित किया गया। सोमपुराजी सहित अन्य कर्मचारी वर्ग को भी पुरस्कृत किया गया।

तत्पश्चात् साधर्मी वात्सल्य का भव्य आयोजन हुआ जिसमे वहा पधारे हुए साधर्मी भाई बहिनो ने तो भाग लिया ही, ग्रामवासियो के भोजन की व्यवस्था भी वहा पर थी।

श्री शातिस्नात्र महापूजन पढाने का लाभ श्री दलपतसिहजी बलवन्तसिहजी छजलानी ने लिया।

द्वारोद्घाटन के पश्चात् भी पूजा पढाई गई जिसका लाभ श्री बुधसिहजी हीराचदजी वैद ने लिया।

इस अवसर पर महासमिति द्वारा यह भी घोषणा की गई कि प्रति वर्ष मगसर मास के प्रथम रविवार को यहा पर वार्षिकोत्सव का आयोजन सम्पन्न होगा।

उपरोक्त आयोजन की कतिपय बातो का उल्लेख ऊपर किया गया है लेकिन जीर्णोद्धार काय एव प्रतिष्ठा महोत्सव मे जिन २ भाई बहिनो का सहयोग एव सेवायें प्राप्त हुई हैं उन सब का नामोल्लेख किए विना सभी के सतत् सहयोग के लिए महासमिति सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करती है।

श्री वर्धमान आयम्बिलशाला

श्री आयम्बिलशाला का कार्य वर्ष भर सुचारू रूप से सम्पन्न होता रहा है। इस सीगे मे जहा १९०९२) २७ का व्यय हुआ वहा प्राप्तिया

२१,३३५)६५ की हुई है और इस प्रकार यह सीगा भी टूट से मुक्त रहा है।

यहां पर जो शेड निर्माण कराया गया था और जिस पर ९३,१३१)६३ का व्यय हुआ था तथा गत वर्ष के विवरण को अंकित करते समय तक ३६७१९)रु० का समयोजन फोटुओं के तहत प्राप्त सहयोग एवं उतरी चद्दरो की बिक्री से किया जा चुका था, उसके पश्चात् ७८७८)रु० और प्राप्त हुए है। इस कार्य मे जितना उत्साह एवं योगदान अपेक्षित है उसकी ओर दानदाताओं का ध्यान आकर्पित करना ही पर्याप्त होगा। सभी साधर्मी बन्धुओ से निवेदन है कि अपने परिजनो अथवा स्वय की फोटु लगाने का जो दोहरा लाभ है उसका सदुपयोग कर अधिक से अधिक योगदान करने की कृपा करे।

बाहर से जयपुर पधारने वाले साधर्मी बन्धुओ की भोजन व्यवस्था भी की जाती रही है।

साधारण खाता

सबसे अधिक द्रव्य साध्य इस सीगे के अन्तर्गत गत वित्तीय वर्प मे जहां ८०,८३६)९१ का व्यय हुआ है वहां प्राप्तियां ७३,१६४)३२ की हुई है। अधिक व्यय के मूल कारणों में चन्दलाई मदिर के साथ संलग्न कमरो के जीर्णोद्वार पर व्यय एवं प्रतिष्ठा के अवसर पर साधारण सीगे से अधिक व्यय होना मुख्य है। साधर्मी भक्ति पर भी प्राप्त राशि से कही अधिक राशि उपलब्ध कराई गई है। इतना सब होते हुए भी गत वर्पो की जो लगभग दस हजार की बचत थी उसका समायोजन करने के पश्चात् अभी तक यह सीगा ऋण भार से मुक्त है।

इस वर्ष मणिभद्र उपकरण भंडार से ५४८१)९० की शुद्ध प्राप्ति इस सीगे में हुई है। इस वर्ष व्याख्यान के नए पाट का निर्माण कराया गया है तथा दो अन्य तख्त आदि सामान बनाए गए हैं जिसके लिए एक सद्गृहस्थ के प्रयत्नों से ५१२१)रु० की राशि प्राप्त हुई है।

उपाश्रय सहित सम्पूर्ण भवन की पुताई, रंग रोगन एवं चित्रकारी का कार्य भी कराया गया है। दो अतिरिक्त स्नान घरों का निर्माण भी कराया गया है।

साधर्मी सेवा

जैसा कि निरन्तर निवेदन किया जाता रहा है कि सार्धमियों की सेवा के लिए अधिकाधिक द्रव्य की आवश्यकता रहती है और घनाभाव के कारण उनकी नितान्त आवश्यक जरुरतो को भी पूरा करने में अत्यन्त संकोच रखना पड़ता है। इस वित्तीय वर्ष मे इस सीगे के अन्तर्गत मात्र २७५१)१३ प्राप्त हुए जब कि ८३४८)८० की राशि भरण पोपण, दवाई, स्कूल की फीस आदि के लिए उपलब्ध कराई गई। अपना कर्त्तव्य समझ कर अधिकाधिक उदार सहयोग अपेक्षित है।

ज्ञानखाता

इस खाते में गत वित्तीय वर्ष में ११२८६)६३ की प्राप्ति हुई जब कि व्यय ११५९४)०५ का हुआ।

गत विवरण में श्री कमलचन्दजी गणिकृत अष्टादश अभिषेक, भक्तामर एवं उवसग्गरं महा पूजन विधि सहित नामक पुस्तक प्रकाशन का उल्लेख किया गया था। यह पुस्तक प्रकाशित कर दी गई है और सभी संस्थाओं एवं व्यक्तियों मे निवेदन है कि वे इसे यहां से आवश्यकतानुसार निशुल्क प्राप्त कर सकते हैं।

प्रशिक्षण

धार्मिक पाठशाला सायकालीन पाठशाला की व्यवस्था पूर्ववत् कायम रही है लेकिन छात्र छात्राओं की धार्मिक प्रशिक्षण के प्रति पर्याप्त अभिरुचि के अभाव मे जितना उपयोग होना चाहिए वह नही हो रहा है। फिर भी व्यवस्था को कायम रखा जा रहा है इसी आशा मे कि कभी तो इसका पूरा उपयोग होगा।

श्री नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ मेवानगर द्वारा प्रतिवर्ष ली जाने वाली धार्मिक परीक्षाओं मे जयपुर से सम्मिलित होने वाले प्रशिक्षार्थियों की परीक्षा इस वर्ष भी यहा पर ली गई हैं।

संगीत शिक्षा की सायकालीन कक्षा भी प्रारम्भ की गई हैं जिसकी व्यवस्था फिलहाल चार माह तक कायम रहेगी।

उद्योगशाला उद्योगशाला मे सिलाई बुनाई प्रशिक्षण का कार्य वर्ष भर सुचारु रूप से सम्पन्न होता रहा है और जैन महिलाओं की अपेक्षा जैनेतर महिलाओं एव बालिकाओं द्वारा इसका अधिक से अधिक उपयोग किया जा रहा है। जैन महिलाओं के लिए सिलाई बुनाई प्रशिक्षण प्राप्त कर स्वावलम्बन की ओर अग्रसर होने का यह सहज सुलभ साधन है जिससे वे अधिक से अधिक उपयोग करें यही कामना है।

पुस्तकालय, वाचनालय एवं ज्ञान भण्डार इनका कार्य भी सुचारु रूप से सम्पन्न होता रहा है। जैन, अर्जैन, दैनिक साप्ताहिक मासिक पत्र पत्रिकायें मगाई जा रही हैं जिनका पाठकों द्वारा भरपूर उपयोग किया जा रहा है। बालकों की अभिरुचि की पुस्तकें भी खरीदी गई हैं और इनमें और वृद्धि की जावेगी।

श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल :

श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल के चुनाव गत वर्ष सितम्बर मे सम्पन्न हुए जिसमें श्री सुरेश मेहता अध्यक्ष एव श्री अशोक जैन मंत्री निर्वाचित हुए जिनके नेतृत्व मे वर्ष भर उनकी गतिविधिया सक्रिय रही है।

इस वर्ष भगवान महावीर स्वामी की जयन्ति के दिन इस जिनालय मे एक हजार एक दीपों की दिवाली की गई जिसका उद्घाटन श्री पारसदासजी ढड्ढा ने किया।

श्री चन्दलाई मन्दिर में प्रतिष्ठा महोत्सव मे भी मण्डल के सदस्यों ने भरपूर सहयोग देकर व्यवस्था को सम्भालने मे योगदान किया। अन्य सघो द्वारा भी मण्डल की सेवायें प्राप्त की गई।

श्री मणिभद्र उपकरण भण्डार

महासमिति के सदस्य श्री जतनमलजी ढड्ढा की कुशल देखरेख मे इसका कार्य उत्तरोत्तर प्रगति पर है। सभी तरह के पूजा उपकरण एव अन्य सामग्री यहा पर विक्रय हेतु उपलब्ध है। इस वर्ष भण्डार से ७४८४)६० की शुद्ध बचत हुई जिसका समायोजन साधारण खाते मे किया गया है।

श्री "मणिभद्र" स्मारिका

इस सस्था के मुखपत्र "मणिभद्र" स्मारिका का प्रकाशन निरन्तर सुचारु रूप से जारी है। २४वें अक की पाठकों द्वारा भूरि २ प्रशसा की गई है और भारतवर्ष मे इसके आगामी अक की आतुरता से प्रतीक्षा की जाने लगी है। लेखकों, विज्ञापनदाताओं एव पाठकों की अभिरुचि निरन्तर बढती जा रही है।

गत वर्ष के अक प्रकाशन मे वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक ७६५६)८० की प्राप्तिया हुई वहा ८०४८)६० प्रकाशन पर व्यय हुआ था। भगवान शखेश्वर पार्श्वनाथ स्वामी का एक अतिरिक्त चित्र सलग्न करने से एक हजार रुपयों का अतिरिक्त

व्यय हुआ था। गत वर्ष के प्रकाशनों के तहत वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पश्चात् (१८५०)रु० की राशि विज्ञापनदाताओं से और प्राप्त हुई है। इस वर्ष के अंक प्रकाशन में दस हजार की प्राप्तियों का लक्ष्य निर्धारित किया गया है और यह विश्वास है कि इस बार भी पर्याप्त बचत होगी।

आर्थिक स्थिति

संस्था की आर्थिक स्थिति पूर्ववत् दृढ़ तो है लेकिन वर्ष भर तक जनता कालोनी मंदिर का निर्माण, चन्दलाई मन्दिर के जीर्णोद्वार एवं प्रतिष्ठा बरखेडा मन्दिर का जीर्णोद्धार, श्री सुमतिनाथ स्वामी के देरासर में चल रहे विभिन्न निर्माण एवं जीर्णोद्धार कार्यो के कारण आर्थिक दबाव बढ़ा है जिसके कारण इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा लगभग पच्चीस प्रतिशत अधिक आमदनी के बाद भी कुल मिला कर ३६०६०)७५ की टूट रही है। साथ ही जो प्राप्तिया हुई है वे भी उत्साहवर्धक ही है। गत वर्ष की २.५२ लाख की प्राप्तियों के समक्ष इस वर्ष ३.०६ लाख की प्राप्तियां हुई है और व्यय ३.४० लाख का हुआ है। जनता कालोनी मन्दिर के निर्माण का कार्य द्रुत गति से जारी है और सघ की सम्पूर्ण शक्ति एवं द्रव्य का उपयोग कर भी इस कार्य को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण कराने का प्रयास किया जा रहा है। अतः समस्त दानदाताओं से अपेक्षा ही नहीं विनम्र प्रार्थना भी है कि वे न केवल अधिक से अधिक उदार मना आर्थिक सहयोग प्रदान करने की कृपा करे, साथ ही जो राशि उनके द्वारा आश्वस्त है उसकी उपलब्धि भी यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र कराने की कृपा करें ताकि समस्त कार्यों का संचालन और अधिक तीव्र गति से किया जाता रहे।

आडीटर

नव-निर्वाचित महासमिति द्वारा चार्टर्ड अकाउण्टेंट श्री राजेन्द्रकुमारजी चतर को संघ का आडीटर तीन वर्ष के लिए नियुक्त किया गया था। श्री चतर साहब ने अपने अथक परिश्रम एवं निःस्वार्थ सेवा भावनावश इस संघ के आडिट कार्य को जिस तरह से सम्पन्न किया है उसके लिए महासमिति उनके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

उनके द्वारा अंकेक्षित लेखों के आधार पर आय-व्यय विवरणिका आय-कर विभाग में प्रेषित कर दी गई है जो मूल रूप में इसके साथ प्रकाशित की जा रही है।

कर्मचारी वर्ग

संघ के समस्त कर्मचारी वर्ग का कार्य वर्ष भर सतोषजनक रहा है और उनकी मेहनत, लगन एवं निष्ठा से संघ का कार्य सुचारु रूप से संचालित करने में भरपूर सहयोग प्राप्त होता रहा है। संघ के मुनीम श्री सम्पतमलजी मेहता की सेवाओं की प्रशंसा करना महासमिति अपना कर्त्तव्य समझती है।

निरन्तर मंहगाई से बढ़ती हुई आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए इस वर्ष भी उनके वेतनों में समुचित वृद्धि की गई है और उनके हित साधनों के प्रति महासमिति जागरुक है।

महासमिति

महासमिति एकता बद्ध सूत्र में बंध कर संघ की सेवा में संलग्न है। महासमिति की निर्वाचन के पश्चात् लगभग डेढ वर्ष के कार्यकाल मे २१ बैठके सम्पन्न हुई है और सभी नीति सम्बन्धी निर्णय ही नही, महत्वपूर्ण कार्यकलापों के विनिश्चय भी महासमिति द्वारा ही किए जाते रहे हैं। महासमिति यह अनुभव करती है कि यह सब होते हुए भी समस्त श्रीसंघ के भरपूर सहयोग एवं मार्गदर्शन पर

भी सफलता निर्भर करती है जो प्राप्त हो रहा है और आशा है कि भविष्य मे भी इसी प्रकार पूर्ण सहयोग, विश्वास और मार्गदर्शन प्राप्त होता रहेगा ताकि उनकी आशाओ एव आकाक्षाओ के अनुरूप महासमिति कार्य सम्पादित करने मे सक्षम हो सके। इस अवसर पर महासमिति समस्त श्रीसघ के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना परम कर्त्तव्य समझती है।

धन्यवाद ज्ञापन

वैसे तो वर्ष भर की गतिविधियो के सफल सचालन मे प्राप्त सहयोग के लिए नामोल्लेख किए बिना महासमिति समस्त श्रीसघ के प्रति अपनी कृतज्ञता एव धन्यवाद ज्ञापित तो करती ही है, साथ ही विशेष रूप से श्री गोपीचन्दजी चोरडिया द्वारा ध्वनि प्रसारण यत्रो की व्यवस्था, श्री लक्ष्मण सिंहजी मारू द्वारा विद्युत व्यवस्था एव श्री जैन नवयुवक मण्डल द्वारा महावीर जन्मोत्सव के अवसर पर प्रस्तुत किए जाने वाले आयोजनो आदि के लिए विशेष रूप से धन्यवाद प्रेषित करती है।

इन्ही शब्दो के साथ मैं वर्ष सम्वत् २०३९-४० क्रमश सन् १९८२-८३ का यह वार्षिक विवरण एव आय-व्यय का लेखाजोखा कतिपय उल्लेखनीय घटनाओ के विवरण सहित आपकी सेवा मे सादर प्रस्तुत करता हू।

आयम्बिलशाला नव शैड निर्माण में सहयोगकर्त्ता

(गत वर्ष की सूची से आगे)

३० श्री स्व माणकचदजी जैन (नाटा) जालन्धर —धर्म पत्नि श्रीमती पदमावती जैन लोढा सुपुत्र सतीश जैन, अनिल जैन पौत्र गौरव जैन

३१ श्री बाबूलाल एम शाह —श्री हेमन्त कुमार बी शाह

३२, श्री स्व इन्दर चन्दजी भण्डारी —श्री भोपाल चन्दजी पौत्र सुभाष, रवि, कवि भण्डारी, जोधपुर

३३ स्व श्री मनसुख भाई लीलाधर मेहता —पुत्र सुरेश कुमार हरिश कुमार मेहता

३४ स्व श्रीमती उमराव कवर मेहता —श्री नारायणदासजी मेहता, पुत्र सुकुमार राजकुमार मेहता

आडिटर—रिपोर्ट

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ,
घी वालों का रास्ता,
जयपुर—302003

विषय :– दिनांक 31–3-83 को समाप्त होने वाले वर्ष का अंकेक्षण प्रतिवेदन।

(1) हमें वे सभी सूचनायें व स्पष्टीकरण प्राप्त हुये है, जिन्हें हमें अंकेक्षण के लिये हमारी जानकारी में आवश्यकता थी।

(2) संस्था का चिट्ठा व आय–व्यय खाता जिनका उल्लेख हमने हमारी रिपोर्ट में किया है, लेखा पुस्तकों के अनुरूप है।

(3) हमारी राय में, जैसा कि सस्था की पुस्तकों से प्रकट होता है, संस्था ने अपने विधान के अनुसार आवश्यक पुस्तकें रखी हैं।

(4) नीचे दी गई मर्यादा के अतिरिक्त हमारी राय में, प्राप्त सूचनाओं, एवं स्पष्टीकरण के आधार पर बनाया गया चिट्ठा व आय-व्यय का हिसाब सच्चा व उचित चित्र प्रस्तुत करता है।

(1) उगाई के लिस्ट में कई नाम ऐसे है जिनका बकाया काफी वर्षो से चल रहा है अत: वसूली की जानी चाहिये या जिनका अता–पता न हो ऐसे खातों को अपलिखित किया जाना चाहिये।

सील – चत्तर एंड कम्पनी
जोहरी बाजार जयपुर।
दि० 14-7-83

चार्टर्ड एकाउन्टेट

R. K. Chatter (C.A)
Prop.
For Chatter and Company

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ

घी वालो का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर

आय व्यय खाता

(दिनाक 1–4–82 से 31–3–83)

गत वर्ष की रकम			चालू वर्ष की रकम	गत वर्ष की रकम			चालू वर्ष की रकम
52,322–76	श्री मंदिर खाते नामे			1,06,772–15	श्री मंदिर खाते जमा		
	आवश्यक खर्च	32,410–15			भेंट खाता	59,102–87	
	विशेष खर्च	86,217–54	1,18,627–69		पूजन खाता	10,520–91	
					किराया खाता	720–00	
					ब्याज बैंक से	14,567–25	
					श्री चदलाई मंदिर से	954–42	
					श्री चदलाई मन्दिर जीर्णोद्धार	23,827–25	1,09,692–70
304–00	श्री मणिभद्र भंडार खाते नामे		2,069–50	9,881–56	श्री मणिभद्र भंडार खाते जमा		9,453–52
56,897–46	श्री साधारण खाते नामे			61,351–29	श्री साधारण खाते जमा		
	आवश्यक खर्च	39,386–45			भेंट खाता	28,344–00	
	विशेष खर्च	41,450–46	80,836–91		साधर्मिक भक्ति	2,751–13	
					वयावच्छ	510–00	
					किराया	3,972–00	
					मणिभद्र प्रकाशन	7,659–00	
					उद्योग शाला	364–00	
					ब्याज बैंक से	11,919–34	
					चदलाई प्रतिष्ठा	17,644–85	73,164 32

पिछला वर्ष	नामे			पिछला वर्ष	जमा		
4,072–29	श्री ज्ञान खाते नामे			11,306–39	श्री ज्ञान खाते जमा		
	आवश्यक खर्च	2,840–00			भेंट खाता	10,522–43	
	विशेष खर्च	8,754–05	11,594–05		ब्याज बैंक से	764–20	11,286–63
24,045–32	श्री आयम्बिल खाते नामे			21,008–11	श्री आयम्बिल खाते जमा		
	आवश्यक खर्च	17,954–27			भेंट खाता	12,194–29	
	विशेष खर्च	1,139–00	19,093–27		किराया	2,715–72	
					ब्याज बैंक से	6,425–64	21,335–65
8,094–76	श्री जीवदया खाते नामे		168–00	8,560–17	श्री जीवदया खाते जमा		945–63
12–85	श्री गुरुदेव खाते नामे		——	803–45	श्री गुरुदेव खाते जमा		659–90
2,399–65	श्री शासन देवी खाते नामे		70–00	2,282–97	श्री शासन देवी खाते जमा		839–98
7,777–05	श्री जनता काकोनी खर्चं खाते नामे		4,820–04	2,622–94	श्री जनता कालोनी खाते जमा		131–00
——	श्री जनता कालोनी जीर्णोंद्धार खाते नामे		1,04,104–27	——	श्री जनता कालोनी जीर्णोंद्धार खाते जमा		66,131–00
93,161–63	श्री आयम्बिल शाला जीर्णोंद्धार खाते नामे		713–20	27,839–75	श्री आयम्बिलशाला जीर्णोंद्धार खाते जमा		12,378–00
				28–17	श्री सात क्षेत्र खाते जमा		17–85
3,363–18	श्री बचत सामान्य कोष में हस्तान्तरित		——	——	शुद्ध हानि सामान्य कोष से हस्तान्तरित		36,060–75
,52,450–95	कुल योग		3,42,096–93	2,52,450–95	कुल योग		3,42,096–93

हीराचन्द चौधरी
अध्यक्ष

जावन्तराज राठौड़
अर्थ मन्त्री

आर. सी. शाह
हिसाब-निरीक्षक

वास्ते : चतरचन्द कं०
चार्टर्ड एकाउण्टेट
आर. के. चतर
म. नं० 8544

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ

घी वालो का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर

चिट्ठा

(दिनाक 1–4–82 से 31–3–83)

गत वर्ष की रकम	दायित्व		चालू वर्ष की रकम	गत वर्ष की रकम	सम्पतिया		चालू वर्ष की रकम
				26,745–47	श्री स्थायी सम्पति		26,748–45
2,89,679–40	सामान्य कोष				जायदाद (दुकान)		
	पिछला शेष	2,89,679–40			श्री विभिन्न देनदारिया		
	कम की गई इस वर्ष की						
	शुद्ध हानि	36,060–75	2,53,618–65	2,636–50	श्री उगाई खाते (विगत सलग्न)	2,474–50	
67,854–00	स्थायी मिति आयम्बिल खाता			2,913–20	श्री अग्रिम खाते (विगत सलग्न)	12,593–20	
	पिछला शेष	67,854–00		480–00	किरायेदारो मे बाकी	——	
	जोडी गई इस वर्ष की आवक	1,558–00	69,412–00	1,112–00	शाति स्नात्र	——	
2,265–00	स्थायी मिति जोत			727–00	राजस्थान स्टेट इलेक्ट्रीकसिटी बोर्ड	727–00	
	पिछला शेष	2,265–00		499–00	भण्डार खाते	499–00	
	जोडी गई इस वर्ष की आवक	——	2,265–00	211–70	पारणा खाते	——	
18,517–05	श्री बरखेडा तीर्थ			1,326–70	श्राविका संघ खाते	1,782–95	
	पिछला शेष	4,231–23		14,285–82	बरखेडा मेला जीर्णोद्धार खाते	19,500–10	37,576–75
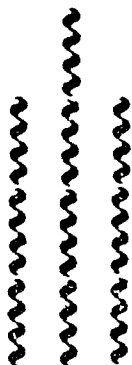
श्री वर्द्धमान आयम्बिल शाला की स्थायी मितिया

१-४-८२ से ३१-३-८३ तक

१	श्री पारसमलजी जब्बरमलजी लोढा अजमेर	५०१-००
२	,, शाह भागचन्दजी ताराचन्दजी	१५१-००
३	,, मदनराज जी कमलराज जी सिंघवी	१५१-००
४	,, बाबूलालजी राजमलजी	१५१-००
५	,, जयतीलाल मगल भाई	१५१-००
६	,, इन्दरचन्दजी गोपीचन्दजी चौरडिया	१५१-००
७	,, मूथा भवरलालजी	१५१-००
८	,, जेवनराज जी गुलाबचन्दजी बोथरा, पाली	१५१-००

इस चातुर्मास में अब तक के ज्ञातव्य विशिष्ट तपस्वी

१ श्री प्रकाशचन्द जी नवलखा — मासक्षमण

२ श्रीमती राजकुमारी नवलखा — ,,
धर्मपत्नी श्री प्रकाशचन्द जी नौलखा

३ श्रीमती पदमा देवी छाजेड — ,,
धर्मपत्नी श्री विमलचन्द जी छाजेड

४ श्रीमती मोहनी देवी सोनी — ,,
धर्मपत्नी स्व श्री सागरमल जी सोनी

५ श्रीमती सन्तोष देवी मेहता — ,,
धर्मपत्नी श्री श्रीचन्दजी मेहता

६ श्रीमती प्रेमलता ढोर — ,,
धर्मपत्नी कमलचन्दजी ढोर

७ श्रीमती धन्न कवर — ,,
धर्म पत्नी विजयमलजी कुम्भठिया, जोधपुर निवासी

८ श्रीमती पुष्पा बोहरा — ,,
धर्मपत्नि श्री मोहनलालजी बोहरा

९ श्रीमती शान्ताबाई सिंघी — "चत्तारी अट्ठ दस दोय"
धर्मपत्नी श्री छगनलालजी सिंघी — (अष्टापद तीर्थ तप)

ऐसे महान तपस्वियों को शत शत वन्दन एवं हार्दिक अभिनन्दन ।

श्री लालबाग जैन संघ

मांजलपुर रोड, बडौदा–390011
(रजिस्टर न० एम० 2509)

सकल जैन श्रीसंघ को आग्रह भरी विनती

वडोदा शहर से तीन किलोमीटर दूर सोसायटी विभाग मे माजलपुर के पास "श्री लालबाग जैन सघ" की स्थापना कुछ वर्षों पहले हुई थी। श्री सघ द्वारा अचित्य चितामणी रत्न समान, कलिकाल कल्पतरु, भवोदधितारक, पुण्डरीक कमल समान, प्रकट प्रभावी, प्रात स्मरणीय श्री चितामणी पार्श्वनाथ भगवान का तीन शिखर वाला, पाच गभारा सहित विशाल, भव्य मनोहर जिनालय बना है। इस मन्दिर का सम्पूर्ण कार्य हो गया है। इस मन्दिर मे वार्टम जिन प्रतिमाजी की स्थापना का श्रीसघ द्वारा निर्णय किया गया है।

इस भव्य जिनालय का निर्माण कार्य ओजस्वी प्रवचनकार विद्वद्रत्न प० पू० मुनिराज श्री श्री चद्रोन्यविजयजी म० सा० के मार्गदर्शन एव सद्प्रेरणा से हुआ है।

श्री लालबाग जैन सघ ने परम पूज्य वर्त्तमान गच्छाधिपति, परमारक्षत्रियोद्धारक, धर्म प्रभावक आचार्य भगवत श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी म० सा० की पावन निश्रा मे स० 2040 मिति माघ वद 6 सोमवार दिनाक 23 जनवरी, 1984 को श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ सहित पाच गभारा मे, पाच मुख्य भगवत सहित माँ भगवती राजराजेश्वरी प्रकट प्रभाविका पद्मावती माताजी, जिन प्रतिमाजी की यक्ष-यक्षणी सहित प्राण प्रतिष्ठा अजनशलाका महामहोत्सव मनाया जायेगा।

प्राण-प्रतिष्ठा का लाभ लेने वाले महानुभाव

1 मूलनायक श्री चितामणि पार्श्वनाथ भगवन्त की प्राण प्रतिष्ठा श्री चदुलाल प्रभुदास शाह (बडौदा ओटोमोबाइल्स) ने रुपये 65,551/– का नकरा देकर लाभ लिया।

2 श्री कलीकुड पार्श्वनाथ भगवत की प्राण प्रतिष्ठा श्रीमती आशा बहन (बम्बई निवासी) ने रुपये 27 111/– का नकरा देकर लाभ लिया।

3 श्री शातिनाथ भगवान की प्राण प्रतिष्ठा श्री चुन्नीलाल बावरदास शाह ने रुपये 15,111/– का नकरा देकर लाभ लिया।

4. श्री आदिनाथ भगवान की प्राण प्रतिष्ठा अ० सौ० हंसमुख बहन नवीनचन्द्र वैद्य ने रुपये 11,111/– का नकरा देकर लाभ लिया।

5. श्री शीतलनाथ भगवान की प्राण प्रतिष्ठा डा० नीता बहन बचुभाई वैद्य ने रुपये 15,111/– का नकरा देकर लाभ लिया।

6. मा भगवती राजराजेश्वरी श्री पद्मावती माताजी की प्राण प्रतिष्ठा श्री कांतिलाल हीरालाल शाह (पारस प्रिन्टरी वाला) ने रुपये 35,111/– का नकरा देकर लाभ लिया।

7. स्फटीक श्री पार्श्वनाथ भगवान व स्फटीक स्वामी श्री महावीर भगवान की प्रतिष्ठा श्री हंसराज भाई बम्बई वाले ने रुपये 5,551/–का नकरा देकर लाभ लिया।

बाकी जिन प्रतिमाजी, यक्ष-यक्षीणी की प्राण प्रतिष्ठा मे नीचे लिखी योजना में आप भाग्यशाली लाभ ले।

श्री जगवल्लभ पार्श्वनाथ	रु० 35,111	श्री अमीझरा पार्श्वनाथ	रु० 35,111
,, वासुपुज्य स्वामी	रु० 35,111	,, महावीर स्वामी	रु० 27,111
,, विमलनाथ स्वामी	रु० 27,111	,, अभिनन्दन स्वामी	रु० 17,111
,, पद्मप्रभु स्वामी	रु० 15,111	,, मुनिसुव्रत स्वामी	रु० 35,111
,, नेमीनाथ भगवान	रु० 35,111	,, सीमंधर स्वामी	रु० 35,111
,, सुमतिनाथ भगवान	रु० 25,111	,, धर्मनाथ भगवान	रु० 21,111
,, अजितनाथ भगवान	रु० 15,111	,, सभवनाथ भगवान	रु० 15,111
,, पार्श्वयक्ष	रु० 9,111	,, पार्श्वयक्षिणी	रु० 9,111

,, विजयानन्दसूरीश्वरजी (आत्मारामजी) म० सा० की मूर्ति

,, विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म० सा० की मूर्ति

उपरोक्त योजना मे सभी भाग्यशाली श्रावक-श्राविकाओं से सादर अनुरोध है कि आप इस योजना में प्राण प्रतिष्ठा का लाभ लेकर हमे राशि चैक या ड्राफ्ट द्वारा भिजवावे।

विनीत।

श्री लालबाग जैन संघ

C/o. श्री चन्दुलाल प्रभुदास शाह (प्रमुख)
बड़ोदा ऑटोमोबाइल्स सेल्स एण्ड सर्विस वाला
इन्दिरा एवन्यु रोड, विश्वामित्री नदी पुल के पास
बड़ोदा (गुजरात)

फोन : 58058

होवे कि न होवें पर मेरी आत्मा यही चाहती है कि
समस्त जैन भगवान महावीर के झन्डे के
नीचे एकत्रित होकर जैन शासन
की शोभा में अभिवृद्धि करें।

—विजय वल्लभ सूरि